

ऐनी बेसेन्ट

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
NATIONAL COUNCIL OF EDUCATIONAL RESEARCH AND TRAINING

मानसी परिचय माला
(द्वितीय पुष्प)

ऐनी बेसेन्ट

लेखिका : शान्ति मेहरोत्रा

परियोजना निदेशक एवं संपादक : डॉ. इन्दिरा कुलश्रेष्ठ

महिला अध्ययन एकक
राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद्
नई दिल्ली

दिसम्बर 1991
पौष 1913

D.W.S 5T-IK

आवरण : छाया पन्त

मूल्य : रु०. 9.50

प्रकाशन विभाग में सचिव, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविंद मार्ग, नई दिल्ली 110016 द्वारा प्रकाशित तथा-288 शगुन कम्पोजर्स द्वारा लेज़र टाइप सेट होकर प्रिंट ओ-बाइड, 394 छत्ता लाल मियां दरियागंज, नई दिल्ली 110002 द्वारा मुद्रित।

प्राक्कथन

जीवन एक सुखद अनुभूति है। इसे भरपूर जीने के लिये यह नितांत आवश्यक हो जाता है कि हम बच्चों में यह क्षमता उत्पन्न करें कि वे अतीत की गहराइयों में झांक कर पिछली भूलों को दुहराए बिना वर्तमान की राह में स्थिर कदमों से चल कर सुनहरे भविष्य की ओर बढ़ सकें। इस सामर्थ्य को, इस क्षमता को विकसित करने का एक सशक्त माध्यम है, अर्थपूर्ण तथा उद्देश्यों के तारों से जगभगाती हुई शिक्षा। शिक्षा एक साधना है और इस सादना को सही रूप से पूरा करने के लिये यह अत्यन्त आवश्यक है कि बच्चों में पाठ्य पुस्तकों के अतिरिक्त भी कुछ पढ़ने की, कुछ जानने की ललक हो। और उनकी इस इच्छा की पूर्ति होती है – सहायक पठन सामग्री अथवा बाल साहित्य द्वारा।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 का एक महत्वपूर्ण कदम है। महिलाओं के लिये समानता के अवसर प्रदान करना व उन्हें सक्षम व समर्थ बनान राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद के महिला अध्ययन एकक में एक परियोजना 1983–84 में आरंभ की गई थी जिसके अंतर्गत 14–18 आयु वर्ग के बच्चों के लिए सहायक पठन सामग्री प्रकाशित करने का निर्णय लिया गया था। इस परियोजना के अतंर्गत 1984 में दो पुस्तकें प्रकाशित की गई, – "हिन्दी कथा लेखिकाओं की प्रतिनिधि कहानियाँ" जिसके प्रधान सम्पादक थे जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय के प्रो. (डॉ.) नामवर सिंह और सम्पादक थे डॉ. रामजन्म शर्मा।

दूसरी पुस्तक अंग्रेजी में थी – "वीमेन एंड लाइफ" जिसमें सुश्री प्रतिभा नाथ ने छोटी–छोटी कहानियों के माध्यम से नारी संबंधी नये मूल्य स्थापित करने का प्रयास किया था।

1986–87 में इस परियोजना को महिला अध्ययन एकक की प्रवाचक डॉ. इंदिरा कुलश्रेष्ठ को सौप दिया गया जिन्होंने इस परियोजना का प्रारुप ही बदल दिया । अब इस परियोजना के अंतर्गत ''मानसी परिचय माला'' नामक श्रृंखला आरंभ की गई है। इस योजना के तीन पुष्प ''बेगम हज़रत महल'', (खंड काव्य), ''ऐनी बेसेंट'' (जीवनी) और ''दहेज दावानल'' (गद्य) – नेहरू जन्म शताब्दी के अवसर पर भारत के बच्चों को सौपे जा रहे हैं। हमें विश्वास है, बच्चे इनसे लाभान्वित होंगे।

इन पुस्तकों को बच्चों के स्तर के लिए लिखने में हिन्दी की विदुषी कवयित्री तथा जोधपुर विश्वविद्यालय की हिंदी विभाग की भूतपूर्व अध्यक्ष प्रो. (डॉ.) उषा गोयल, प्रख्यात लेखिका तथा आकाशवाणी, इलाहाबाद की महिला कार्यक्रमों की भूतपूर्व प्रोड्यूसर श्रीमती शान्ति मेहरोत्रा तथा राष्ट्रीय महिला व बाल विकास संस्थान में कार्यरत (डॉ.) उषा गोयल ने अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। मैं उन्हें इन सुंदर रचनाओं के लिए हार्दिक बधाई देता हूँ।

इस परियोजना को सजा–संवार कर एक नयी श्रृंखला का रूप देने का कार्य डॉ. इंदिरा कुलश्रेष्ठ ने किया है, जो अब इसकी निदेशक तथा सम्पादक भी है। अनके इस सफल प्रयास के लिए मैं परिषद की ओर से उन्हें भी बधाई देता हूँ।

आपकी टिप्पणियों, विशेष रूप से बच्चों की टिप्पणियों की हमें प्रीतक्षा रहेगी।

डा. के. गोपालन
निदेशक
राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद

अक्तूबर 1989

आमुख

कभी–कभी मैं सोचती हूँ, आखिर साहित्य क्या है? क्यों पढ़ते है हम किताबों? क्यों हम चाहते हैं कि हमारे बच्चे पढ़े – ढेर सारी किताबों की दुनिया में स्वतंत्र विचरण करें ? जब जब मेरे मन ने यह प्रश्न उछाला है, मेरे विवेक ने एक ही उत्तर दिया है – साहित्य उस भाषा को कहते है जिसमें अर्थ की अनेक परतें होती हैं। साहित्य के दो विशेष कार्य हैं – संदर्भ प्रस्तावित करना और भावनाओं को अभिव्यक्त करना ।

दूसरा प्रश्न जो मुझे प्रायः झकझोरता रहता है वह यह है कि आखिर वह बाल–साहित्य से हमारा तात्पर्य क्या है ? इसकी क्या विशेषतायें हैं जो इसे साहित्य की एक अलग ही श्रेणी में स्थान देती है? मैं समझती हूँ कि बाल साहित्य का सृजन करने वाले लेखकों के सामने एक विशिष्ट उद्देश्य होता है कि प्रत्येक बच्चे को इसके माध्यम से स्वाध्याय की ओर प्रेरित करके अधिक से अधिक शिक्षित बनाया जा सके । यहां शिक्षा से तात्पर्य अक्षर ज्ञान से नहीं है । यहां तो शिक्षा का अर्थ है बालक के मर्म व उसकी आत्मा को सुसंस्कृत बनाना । और उसके लिए कुछ ऐसे मूल्य है, जो हम उन्हें देना चाहते हैं। जहां तक बच्चों के व्यक्तिगत विकास का संबंध है, पुस्तकों का, विशेष रूप से उनके लिए लिखी गई पुस्तकों का एक महत्त्वपूर्ण स्थान होता हे। यही वह माध्यम है जिसकी नींव पर उनका चरित्र, उनका आचरण, उनका ज्ञान और उनके विचार स्थापित होते हैं। जीवन उनके लिए एक जैसी अनुभूति बन जाता है जिससे उन्हें आदर्शों का, सौन्दर्य का, और भावनाओं का बोध होता है और यदि साहित्य में यह गुण है तो क्या शिक्षाविदों का यह कर्तव्य नहीं हो जाता है कि बच्चों को केवल सर्वोत्तम ही दे सकें ?

समाज एक ऐसी संस्था है जो नारी और पुरुष दोनों से मिल कर ही बनती है। वे एक दूसरे के पूरक हैं, सुख दुख के भागीदार है, और एक ही रथ के दो पहियों के समान हैं। गाड़ी कहीं रुक न जाये, कदम कहीं डगमगा न जायें, इसके लिये आवश्यक है कि दोनों में प्रेमभाव, सामंजस्य और व्यक्तिगत स्वतंत्रता और समानता बनी रहे ।

महिलाओं ने भी देश के विकास में स्वतंत्रता संग्राम में, साहित्य में कला में विज्ञान, तकनीकी और चिकित्सा के क्षेत्र में, अंतरिक्ष की यात्रा में, पर्वतारोहण आदि में पुरुषों के समान ही भाग लिया है। फिर क्या कारण, है कि जन्म लेते ही बेटी एक बोझ और बेटा एक उपलब्धि का द्योतक हो जाता है ? राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्ष, परिषद में 1983–84 में इसी असमानता को दूर करके स्त्री पुरुष समानता के मूल्यों को बच्चों तक पहुंचाने के आश्य से सहायक पठन सामग्री प्रकाशित करने की योजना बनाई गई थी । इस योजना के अंतर्गत दो पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी है।

इसी योजना का कार्यभार मुझे 1985–86 में सौपा गया । आज इसी के अंतर्गत ''मानसी परिचय माला'' की श्रृंखला के तीन पुष्प हम बच्चों को भेंट कर रहे हैं।

''बेगम हज़रत महल'', एक खंड काव्य है जिसे सरल किंतु मार्मिक भाषा में लिखा है विदुषी कवियत्री डॉ. रमासिंह ने । मुझे विश्वास है कि क्रांति की अद्भुत लौ जो बेगम ने प्रज्वलित की थी, वही हमारी स्वतंत्रता का आधार है, यह हमारे बच्चे समझ सकेंगे।

''ऐनी बेसेंट'' की रचयिता है डॉ. उषा गोयल जिन्होंने इस निर्मम प्रथा से बच्चों को परिचित कराने का अनुपम प्रयास किया है।

''दहेज दावानल'' की रचयिता है डॉ. उषा गोयल जिन्होंने इस निर्मम प्रथा से बच्चों को परिचित कराने का अनुपम प्रयास किया है।

इन तीनों की लेखिकाओं ने इस श्रृंखला को पूरा करने में अपना बहुमूल्य समय व सहयोग दिया है, जिसके लिए मैं व्यक्तिगत रूप से उनकी आभारी हूँ ।

इन पुस्तकों पर विशेष रूप से बालक बालिकाओं की प्रतिक्रियाओं की हम प्रतीक्षा करेंगे ।

इन्दिरा कुलश्रेष्ठ

— शांति मेहरोत्रा

श्रीमती शांति मेहरोत्रा हिन्दी साहित्य की एकजानी मानी हस्ताक्षर है। 1944 से लेकर अब तक आपके अनेक काव्य संग्रह, जीवनियाँ, बाल नाटक, बाल कहानियाँ तथा व्यंग्य पुस्तक रूप में प्रकाशित हो चुकी है।

आपको हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग द्वारा गीत संग्रह, 'रेखा' पर संवत् 2004 का 'सेकसेरिया महिला परितोषिक', गीत संग्रह 'मरीचिका' पर माता कस्तूरबा परितोषिक तथा 1989 में हिन्दी साहित्य सम्मेलन द्वारा 'साहित्य महोपाध्याय' की मानद उपाधि से सम्मानित किया गया है।

आप सन् 1956 से 1983 तक आकाशवाणी इलाहाबाद से प्रोड्यूसर के रूप में सम्बद्ध रही है।

सम्पर्क :
20–ए, घोष बिल्डिंग, जवाहर लाल नेहरू रोड,
इलाहाबाद (उ.प्र.) 211002

अनुक्रम

(गांधी जी ने उनके संबंध में कहा था :)

डा. बेसेंट संसार–प्रसिद्ध महिला है। यह भारत के लिए कम लाभ की बात नहीं है कि उन्होंने भारत माता को अपनी मां मान लिया है । उनकी उम्र में लोगों को पूरी तरह आराम का जीवन बिताने की आवश्यकता होती है जबकि वे आश्चर्यजनक शक्ति से लिख रही है, घूम रही हैं और भारत की स्वतंत्रता–प्राप्ति के लिए तरह–तरह की योजनायें बना रही हैं। कठिनाइयों के सामने उनका अदम्य साहस, उनकी संयोजन–क्षमता, उनकी लिखने तथा बोलने में प्रतिभा आदि के अतिरिक्त और भी अनेक गुण हैं जिन्हें मैं गिना सकता हूँ । वे हमारे लिए ऐसी बहुमूल्य सम्पदा हैं जिनका हमें उचित मूल्यांकन करना चाहिए।

– मो. क. गांधी

'हम सबकी चिंताएँ एक सी हैं, दुःख एक से हैं, उत्सुक आशाएँ एक सी हैं, ज्ञानार्जन की तीव्र उत्कंठा एक सी है, अतः यह संभव है कि एक की कहानी सभी के लिए सहायक सिद्ध हो और एक ऐसी आत्मा की कथा—जो अंधकार में अकेली आगे बढ़ी और दूसरी ओर पहुंचने पर जिसने प्रकाश पाया, जो तूफानों के बीच संघर्ष करती रही और दूसरी ओर पहुंच कर जिसे शांति मिली—दूसरों के जीवन के अंधकार और तूफ़ानों में आशा और शांति की एक किरण जगा जाये ।

— ऐनी बेसेंट

नींद के आसपास

नींड़ के आसपास

''पीछे मुड़कर देखती हूँ तो यह सोचकर अच्छा लगता है कि शैशव और बचपन में जो कुछ सबसे प्रिय और गरिमापूर्ण लगता है, माँ उसका एक आदर्श रूप थीं । उनका ममतामय चेहरा घर को सुंदरता से भर देता था। उनका प्यार चमकता हुआ सूरज भी था और ओट के लिए शीतल छाया भी। मैंने ऐसी कोई दूसरी महिला नहीं देखी, जो जिनसे स्नेह करती हो, उनके प्रति इतने निःस्वार्थ भाव से समर्पित हो।''

ऐनी बसेन्ट

नन्हीं ऐनी की दुनिया मां के ही आसपास सीमित थी। वह घर में जिधर भी जातीं, ऐनी छाया की तरह उनके पीछे लगी रहती । कभी वह मां की बांह छू कर प्रसन्न हो जाती, कभी उनका गाउन मुट्ठी में भरकर संतुष्ट हो जाती, कभी बैठी हुई मां की पीठ से सट कर उनके कांधों को नन्हीं–नन्हीं बाहों से घेरकर लिफ्ट जाती।

एक दिन मां ने हंस कर कहा, 'मेरी नन्हीं बिटिया । अगर तुम मां से इसी तरह चिपकी रहीं तो मुझे तुम्हें एक डोर से अपने एप्रन के साथ बांध लेना पड़ेगा ।'

बिटिया रानी बहुत उत्साहपूर्वक बोलीं, ''मेरी अच्छी मां ! डोरी में गांठ खूब कस कर बांधना।'' और सचमुच माँ – बेटी के प्यार की डोर इतनी मजबूती से बंधी रही कि जीवन के बड़े से बड़े दुख कष्ट अथवा संघर्ष उसे ढीला नहीं कर सके ।

ऐनी का जन्म 1 अक्तूबर सन 1847 को शाम पांच बज कर उनतालिस मिनट पर लंदन में हुआ था । उसकी मां, नानी ओर दादी आइरिश थी। और दादा तथा पिता इंगलैंडवासी थे । आइरिश भाषा उसे बहुत मधुर लगती थी और आइरिश स्वभाव उसके मन को बहुत भाता था । अपनी मां एमिली वुड की दो विशेषतायें ऐनी ने वंश परंपरा से पाई

थीं – शांत और सयंमित स्वभाव तथा आत्म सम्मान की भावना। एमिली वुड आयरलैंड के एक सम्मानित और हंसमुख परिवार की दूसरी बेटी थीं और चारित्रिक गुणों को बहुत महत्त्व देती थी। इसी आधारशिला के बल पर उनकी बेटी ऐनी जीवन भर चुनौतियों को स्वीकार ही नहीं करती रही, अपने सिद्धांतों के लिये अग्नि परीक्षा भी देती रहीं। उसकी आलोचना या बुराई हो, यह उसे स्वीकार था किंतु वह यह कभी सहन नहीं कर सकती थी कि वह खुद अपनी नज़रों में गिर जाये।

ऐनी के पिता विल्यिम वुड बहुमुखी प्रतिभा के व्यक्ति थे। डाक्टरी में तो उनकी रूचि थी ही, साथ ही वह एक कुशल गणितज्ञ, साहित्य प्रेमी तथा दर्शनशास्त्र के ज्ञाता भी थे। उन्हें फ्रांसीसी, जर्मन, इतालवी, स्पेनिश और पुर्तगाली भाषाओं का बहुत अच्छा ज्ञान था। अपनी पत्नी और बच्चों से उन्हें बेहद लगाव था। जब एमिली घर–गृहस्थी के काम में व्यसत होती तब उनके पति पास बैठकर उन्हें मधुर स्वर में स्वदेश तथा अन्य देशों की कवितायें सुनाते रहते। बहुत नेक होते हुए भी धार्मिक कर्मकाण्ड में उन्हें ज्यादा विश्वास न था। जो धार्मिक बात उन्हें तर्कसंगत न लगती, उस पर उनकी विनोदपूर्ण टिप्पणी सुन कर एमिली चुपचाप दूसरे कमरे में चली जातीं।

एक दिन तपेदिक से मरे एक व्यक्ति के शव की चीरफाड़ करते समय विलियम वुड की उंगली कट गई। घाव आसानी से भरा नहीं और उंगली सूजती गई। दो – एक दिन बाद एक सर्जन ने घाव देखकर कहा, "वुड, अगर मैं तुम्हारी जगह होता तो यह उंगली कटवा देता।" कुछ अन्य डाक्टर इसके पक्ष में नहीं थे इसलिये आपरेशन की बात टल गई। सन 1852 के अगस्त महीने के मध्य जब वे एक बस की छत पर बैठकर यात्रा कर रहे थे तब अचानक बहुत भीग गये। इससे उनको सर्दी लग गई और तेज बुखार भी हो गया। एक बहुत योग्य चिकत्सिक ने उनकी जांच करने के बाद एमिली को अलग बुला कर बिना किसी भूमिका के कहा, "इन्हें इतनी तेजी से बढ़ने वाली तपेदिक की बीमारी हो रही है कि छह हफते से ज्यादा ये आप लोगों के बीच नहीं रह पायेंगे।"

यह सुनकर एमिली स्तब्ध रह गईं और लड़खड़ा कर गिर पड़ी,

लेकिन होश में आते ही वह सामान्य लगने का प्रयास करते हुए जी जान से पति की सेवा में जुट गईं। इसके बाद वह जितने दिन जीवित रहे, दिन हो या रात, एमिली ने उन्हें दस मिनट से अधिक के लिये अकेला नहीं छोड़ा ।

वुड की माँ और बहन रोमन कैथोलिक थीं। उनका अंतिम समय निकट देखकर उन्होंने पादरी को बुलवा भेजा लेकिन मृत्यु–शैया पर पड़े रोगी का क्रोध देखकर उन्हें कमरे से बाहर चला जाना पड़ा । उनकी पत्नी ने अपनी सारी धार्मिक आस्था के बावजूद यही कहा कि जिन कर्मकाण्डों से उन्हें हमशा चिढ़ रही, अपने प्रिय पति के अंतिम क्षणों में उन बातों को लेकर वह उन्हें कष्ट नहीं पहुंचाने देंगी ।

5 अक्तूबर को सब कुछ समाप्त हो गया । एमिली ने अकेले छोड़ दिये जाने का आग्रह करके कमरा भीतर से बंद कर लिया । दूसरे दिन सुबह अपनी मां के बहुत अधिक आग्रह करने पर जब उन्होंने दरवाजा खोला तो मां चौक कर बोली, ''हे भगवान ! एमिली तुम्हारे सारे बाल सफेद कैसे हो गये ?''

पति की असामायिक मृत्यु ने एमिली के शांत, सुखी और संपन्न जीवन को चिंता और संघर्षों से भर दिया । बच्चों को उच्चतम शिक्षा दी जाये, यह उनके पति की अंतिम इच्छा थी। लेकिन उच्च शिक्षा तो दूर, उनके पास तो इतना पैसा भी न था कि वह उनके भोजन तक का प्रबंध कर सकें ।उनके कुछ संबंधियों ने यह कहा भी कि वे उनके पुत्र को शहर के किसी स्कूल में पढ़ा–लिखा कर काम–धंधे लगवा देंगे, लेकिन एमिली इसके लिये राज़ी नहीं हुई। माता–पिता ने हैरी के लिये पब्लिक स्कूल और यूनिवर्सिटी की शिक्षा का सपना देखा था और वह अकेली हर कीमत चुका कर उस सपने को साकार करने के लिये कृतसंकल्प थीं । परिचित और परिवार के बहुत से लोग एमिली की इस महत्वाकांक्षा को नासमझी और अदूरदर्शिता मानकर किनारा काटने लगे । उन्होंने शुरू में बेटे को हैरी में पढ़ाने का निश्चय किया । वह हैरी के कुछ विद्यार्थियों के लिए एक बोर्डिंग हाउस चला कर किसी तरह उसकी फीस आदि का प्रबंध करने लगीं । इस दिशा में हैरो के हैडमास्टर डा. वोघेन ने भी

उनकी बहुत सहायता की। ऐनी की शिक्षा के लिये भी वह बहुत चिंतित थीं। लड़कों के साथ पलते हुए ऐनी उनसे भी ज्यादा फुर्ती से पेड़ों की डालों पर चढ़ना सीख गई थी और क्रिकेट खेलने में भी उनसे होड़ लेने लगी थी, लेकिन उसकी उपयुक्त शिक्षा का प्रबंध अभी तक नहीं हो पाया था ।

उन्हीं दिनों संयोग से एमिली और ऐनी का परिचय सुप्रसिद्ध लेखक कैप्टेन मैरियट की बहन कुमारी मैरियट से हो गया । कुमारी मैरियट को निर्धन परिवारों के प्रतिभाशाली बच्चों को शिक्षा देने में बहुत सुख मिलता था । ऐनी को देखकर उन्होंने उसे भी अपनी भतीजी के साथ रख कर शिक्षा देने की इच्छा प्रकट की। पहले तो एमिली अपनी दुलारी बेटी को उनके पास छोड़ने को तैयार नहीं हुई लेकिन फिर उन्होंने सोचा कि कुमारी मैरियट जैसी योग्य शिक्षिका वह स्वयं कहां से जुटा पायेंगी? ऐनी को उनके हाथों में सौप दिया तो उसे अच्छी से अच्छी शिक्षा ही नहीं मिलेगी वरन उसके व्यक्तित्व का भी सही दिशा में विकास हो सकेगा। मोह में पड़ कर क्या वे अपनी बेटी के विकास में बाधक बनेंगी? यही सोच समझ कर एमिली ने भारी मन से कुमारी मैरियट का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया ।

ऐनी ने एक नये संसार में प्रवेश किया । कुमारी मैरियट का शिक्षा देने का ढंग इतना रोचक था कि बच्चों पर पढ़ाई का आंतक होने की जगह उनके मन में और अधिक जानकारी प्राप्त करने की उत्सुकता बनी रहती थी । ममतामयी कुमारी मैरियट को सब बच्चे 'आंटी' पुकारते और वह उनकी माँ बन कर देखरेख करतीं और गुरू बन कर ज्ञान बांटतीं। उनका शिक्षा देने का ढंग था ही इतना रोचक कि बच्चे सहज ही उसकी ओर आकर्षित होते। रटने के लिये व्याकरण नहीं, स्पेलिंग की किताब नहीं । भूल करने पर मार खाने के लिय संटी नहीं, बेंत नहीं । नक्शे देख देँख कर भूगोल पढ़ना, पत्र और मनचाहे लेख लिख लिख कर एक दूसरे को सुनाना और उसमें एक दूसरे की भूलें पकड़ना । खूब पैदल घूमना, मित्रों के साथ घुड़सवारी करना, और देश विदेश घूमकर विदेशी भाषाएं सीखना ।

एक बार व्यावहारिक शिक्षा और भाषा ज्ञान के उद्देश्य से मिस मैरियट अपने विद्यार्थियों को फ्रांस और जर्मनी घुमाने ले गईं। वहां का एक रोचक अनुभव ऐनी के शब्दों में –

"जब मैं चौदह वर्ष की थी। तब मिस मैरियट हमें अपने साथ फ्रांस और जर्मनी घुमाने ले गईं। वह कुंवारी महिला थीं और शायद इसीलिये उन्हें लगता था कि सब युवक भेड़िये हैं जिनसे उन्हें अपने सयाने मेमनों को दूर ही रखना चाहिये । बान नगर में जिस बोर्डिंग हाउस में हम ठहरे हुए थे, वह राइन नदी के किनारे बना बहुत सुंदर पुराना किला था । वहां पर ड्यूक आफ हैमिल्टन के दो बेटे डगलस और चार्ल्स भी अपने अध्यापक के साथ ठहरे हुए थे । उन लड़कों को पता चल गया कि मिस मैरियट यह पसंद नहीं करतीं कि उनकी 'बच्चियाँ' पुरूष वर्ग के किसी व्यक्ति के साथ बात भी करें । बस उन्हें मनोरंजन का अच्छा अवसर मिल गया । वे हमारी खिड़की के सामने से घोड़ों को नचाते हुए निकल जाते, जैसे ही हम लोग घूमने जाने के लिये निकलते, वे अपने हैट उतार कर बड़ी शिष्टता से झुक कर अभिवादन करते, गिरजाघर में वे चुन कर ऐसी जगह बैठते जहां से हम लोग उन्हें दिखाई देते रहते । एक महीना बीतते बीतते आंटी इतना घबरा गईं कि उन्होंने भाग कर लड़कियों के एक स्कूल में शरण ली । उतना सुंदर स्थान छोड़कर जाते हमें बुरा तो बहुत लगा लेकिन करते क्या !"

सन 1862 की गर्मियां ऐनी ने उनके साथ सिडमाउथ में और जाड़ा लंदन में काटा। अब वह पढ़ाई लिखाई में उसे आत्म निर्भरता की ओर ले जा रही थीं। बसंत के आगमन के साथ ही उन्होंने उसे विदा देते हुए कहा,

"अब तुम अपनी पढ़ाई लिखाई का दायित्व खुद संभाल सकती हो। जो कुछ मैं तुम्हें सिखा सकती थी, सिखा चुकी । अब तुम्हें अपने पंखों को आजमा कर देखना चाहिए कि वे तुम्हें कहां तक ले जाते है।"

सोलह वर्ष की होते होते ऐनी ने अपनी स्कूली पढ़ाई पूरी कर ली । वह मां के पास रह कर संगीत, घुड़सवारी और धनुर्विद्या का अभ्यास

करती। बहुत ही हंसमुख और जिंदादिल होने के कारण वह पार्टियों की जान थी। अपने ढंग से वह पढ़ाई भी खूब करती रहती। घर में जो कुछ मधुर था, सुहावना था, स्नेहपूर्ण था, वह सब ऐनी के हिस्से का था और जो कुछ अभावपूर्ण, संघर्षपूर्ण, कष्टपूर्ण था वह सब एमिली ने अपने लिए सुरक्षित कर लिया था । वह घर गृहस्थी का काम करतीं और खर्चे के लिये आय की व्यवस्था करतीं। जब कभी ऐनी काम में उनका हाथ बंटाना चाहती तब वह स्नेह से कह दिया करती, "तुम्हारा काम करने में मुझे बहुत सुख मिलता है, बेटी ! तुम खेलो कूदो, मुझे अपना काम करने दो ।"

ऐनी के शब्दों में– "मेरी मां सबसे कोमल, सबसे गर्वीली, सबसे महान महिला थीं। अपने प्रियजनों की उनसे अधिक निरासक्त भाव से सेवा करने वाली, ओछी और घटिया बातों से हार्दिक घृणा करने वाली, आत्म प्रतिष्ठा के प्रति सचेत, बेहद स्वाभिमानी, फौलादी इच्छाशक्ति वाली, स्वभाव से अत्यन्त मधुर, मेरे बचपन को स्वप्नलोक सी धूप से भर देने वाली, मेरे विवाह से पूर्व तक पीड़ा के हर स्पर्श से मुझे बचाने वाली, माँ के अतिरिक्त कोई दूसरी महिला मैंने नहीं देखी। वह किसी कष्ट और चिंता को मेरे पास तक न फटकने देतीं और यही चाहती थी कि सारी चिंताएं वे स्वयं झेलें और सारे सुख मैं पाऊं। घुटनों तक लंबे मेरे घुंघराले केश वही संवारती थीं, वस्त्रों और फूों से वही मुझे सजाती थी। मेरा बचपन और तरूणाई इतनी सुरक्षा और स्नेह में बीती कि पीड़ा और चिंता का अस्तित्व मैंने कभी जाना ही नहीं ।"

परिवार के बीच

परिवार के बीच

''कष्ट तो बड़ी शिक्षा देते हैं। जीवन के अच्छे से अच्छे पाठ सुख में नहीं, दुख में ही पढ़े जाते हैं।''

ऐनी बेसेन्ट

सन् 1866 में ईस्टर के दिनों में ऐनी का परिचय एक युवक पादरी से हुआ, जिनका नाम रेवरेंड फ्रैंक बेसेंट था । इन्होंने कैम्ब्रिज में शिक्षा पाने के बाद, कुछ ही दिन पूर्व पादरी के रूप में दीक्षा ली थी। कुछ दिनों बाद वे एक रमणीक स्थान पर छुट्टी मनाने गये हुए थे । वहां अन्य बहुत से लोग भी इसी उद्देश्य से आये हुए थे, जिनमें ऐनी भी थीं। हम–उम्र होने के नाते घूमने जाते समय, घुड़सवारी के समय या कार में ड्राइवर करते समय रोज़ उन दोनों का साथ सहज ही हो जाता था । एक हफ्ता कब बीत गया, पता ही न चला । वापस जाने से कुछ ही देर पहले फ्रैंक बेसेंट ने ऐनी के सामने विवाह का प्रस्ताव रख दिया । सुन कर वह आश्चर्यचकित रह गईं क्योंकि उनके मन में इस तरह की कोई भावना नहीं थी। इच्छा तो हुई कि वह तुरंत इस प्रस्ताव को ठुकरा दें किंतु संकोचवश वह ऐसा न कर सकीं और सोच में डूबी खड़ी रहीं। फ्रैंक यह कह कर चले गये कि वह इस बारे में किसी से कुछ न कहें, अपनी मां से भी नहीं । उनसे जो कुछ कहना होगा वे स्वयं ही आ कर कहना पसंद करेंगे। ऐनी बहुत उलझन में पड़ गईं क्योंकि अपनी माँ से उन्होंने कभी कोई बात छुपाई नहीं थी। उनके मन में फ्रैंक के प्रति कोई आकर्षण भी वह अनुभव नहीं कर रही थीं। वास्तव में रूमानी दुनिया उनके लिए एक अनजाना लोक था और वह विवाह के बंधन में बंधना ही नहीं चाहती थीं।

फ्रैंक के नगर में वापस आते ही ऐनी ने उन्हें बता कर अपनी मां से इस बारे में बातचीत की। एमिली को फ्रैंक का प्रस्ताव अच्छा ही लगा और तीन चार माह टालने के बाद उन्होंने उनकी सगाई के लिये अपनी स्वीकृति दे दी। फ्रैंक और मां ऐनी के मन की सही स्थिति जानकर निराश

और दुखी होंगे इसलिये जिस व्यक्ति से ऐनी प्रेम ही नहीं करती थीं, उससे चुपचाप सगाई हो जाने दी। बाद में दो एक बार उन्होंने मां के सामने सगाई तोड़ देने की इच्छा प्रकट की लेकिन एमिली एक बार दिए गए वचन को तोड़ने के पक्ष में नहीं थी। उन्होंने यह भी समझाया कि जब प्रभु की आराधना और निर्धनों की सेवा को ही ऐनी ने जीवन का लक्ष्य बनाया है, जब उन्होंने पाप और दुखों को मिटाने के लिये युद्ध करने की ही ठानी है, तब पादरी से विवाह करके ही वह लोकहित के ये कार्य अधिक समर्पित भाव से कर पायेंगी। अन्ततोगत्वा सन 1867 के जाड़े में ऐनी और फ्रैंक विवाह के बंधन में बंध गये ।

बीस वर्ष की ऐनी एक भोली और नादान बच्ची की तरह वैवाहिक जीवन की जिम्मेदारियों से बिल्कुल अनजान थीं। यह समझने में उन्हें ज़्यादा दिन नहीं लगे कि आराधना और लोक सेवा की जिस ऊंचाई तक पहुंचने की इच्छा से उन्होंने उस जीवन साथी को चुना था वह उन्हें वहां तक पहुंचाने में सक्षम थे ही नहीं । वह सतह पर जीने के आदी थे जब कि वे स्वयं गहराई में मोती तलाश करने को उत्सुक थीं । वह पति की सत्ता को सर्वोपरि मानते थे, और पत्नी से यह आशा रखते थे कि वह उनकी हर आज्ञा का पालन करेंगी, और सही हो या गलत, उनकी किसी बात पर प्रश्नचिन्ह नहीं लगायेंगी। आरंभ से ही दोनों की प्रकृति भिन्न थी। [illegible] ऐनी बसेंट के शब्दों में ''पति के अधिकारों और पत्नी के समर्पण क विषय में उनके बड़े ऊंचे–ऊंचे विचार थे । वे व्यवस्थित ढंग से काम करने वाले, ज़रा ज़रा सी बात पर अप्रसन्न हो जाने वाले और बड़ी मुश्किल से सहज और प्रसन्न होने वाले व्यक्ति थे, जबकि मैं स्वाधीन प्रकृति की घर गृहस्थी की सामान्य बातों के प्रति उदासीन, तेज़, भावुक और स्वाभिमानिनी थी।''

इन सारी विषमताओं के बीच घर गृहस्थी संभालते तथा पति की सेवा टहल करते हुए भी श्रीमती बेसेंट ने अपने पंख तोलने प्रारंभ कर दिये । उनके मन में उठते हुए सैकड़ों प्रश्न उत्तर की तलाश करने लगे । अनेक धार्मिक शंकायें उनकी आस्था को झकझोरने लगीं।

सन 1867 में उनका परिचय श्री राबर्ट्स से हुआ । वह ''गरीबों के

प्रवक्ता'' कहलाते थे और उनको अधिकारों के लिये पैरवी करने का कोई पारश्रिमिक नहीं लेते थे । उन दिनों कोयले की खानों में फटे पुराने कपड़ेपहने स्त्रियाँ जी तोड़ कर मेहनत करतीं फिर भी उन्हें भूखे पेट ही सोना पड़ता । उनकी सारी स्त्री–सुलभ कोमलता गरीबी सोख लेती थी। दरवाजे पर रखवाली के लिये बैठाये गये तीन चार साल तक के भोले भाले बच्चे जब बैठे बैठे ऊंघ जाते तो गालियों और लातों से जगाये जाते। हर तरफ गरीबी, अभाव और क्रूरता । श्री राबर्ट्स के आंदोलन के फलस्वरूप ही स्त्रियों और छोटे बच्चों के खान में काम करने पर प्रतिबंध लग सका था । बाद में जब कभी वे उस प्रदेश से गुजरते, स्त्रियाँ बच्चों को गोद में उठा–उठा कर उनके दर्शन करातीं और आशीर्वाद देती कि भगवान वकील राबर्ट्स को सुखी रखना ।

श्री राबर्ट्स जाने माने वक्ता तथा राजनीतिज्ञ श्री जान ब्राइट के प्रशंसक थे । राजनीति में श्रीमती ऐनी बेसेंट ने पहले कभी रुचि नहीं ली थीं। श्री राबर्ट्स की बातें वह ध्यान से सुनने लगीं। उनके वृद्ध शरीर का युवा उत्साह उन्हें अपने सेवा कार्यों से प्रभावित करने लगा । राबर्ट्स आयरलैंड के गुप्त क्रांतिकारी फीनियन आंदोलन के प्रबल समर्थक थे। आइरिश क्रांतिकारी विलियम ऐलन, लारकिन और ओ ब्राइन को बचाने के लिए उनके भरपूर प्रयास के बावजूद उन्हें फांसी की सजा सुना दी गई।

इसी वर्ष श्रीमती बंसेंट का श्री चार्ल्स ब्रैडला के लेखन से पहली बार परिचय हुआ । उनके द्वारा सम्पादित पत्रिका नेशनल रिफार्मर में उनका एक बहुचर्चित लेख प्रकाशित हुआ था । ''व्हयर इज अवर बोस्टेड इंगलिश फ्रीडम''? "हमारी वह अंग्रेजी स्वतंत्रता कहां है?"जिसकी हम डींग हांकते हैं। उसे पढ़कर वह बहुत प्रभावित हुई। बाद में तो चार्ल्स ब्रैडला उनके बहुत बड़े हितैषी और मित्र बन गये ।

घर में पति पत्नी के बीच की खाई बढ़ती ही जा रही थी । पादरी बेसेंट को पति की सत्ता पर बहुत गर्व था और वह मानते थे कि पत्नी का सबसे बड़ा धर्म है पति की आज्ञा का पालन करना । उसकी क्या भावनायें हैं, क्या सपने हैं, इस ओर उनका ध्यान ही नहीं जाता था ।

ऐनी को मां ने कभी एक कठोर शब्द तक नहीं कहा था इसलिये पति की कठोरता से पहले तो वह आहत होकर आंसुओं में डूब जातीं थी किंतु फिर उनकी स्वाभिमानी, मौन विरोध की भावना ने उन्हें ठंडे, सख्त लोहे में बदल दिया। उन्होंने स्वयं अनुभव किया कि

> ''कैसे वह उत्साही और मस्त लड़की, सारे अरमान, आशायें, भय और मोहभंग को मन की गहराइयों में छुपाये, तेजी से एक गंभीर गर्वीली, मितभाषी स्त्री में बदलती गई। शायद मैं शुरू से ही बहुत असंतोषजनक पत्नी रही होऊंगी यद्यपि मैं सोचती हूँ यदि मेरे साथ कुछ दूसरी तरह व्यवहार किया जाता तो मैं भी घर घर में पाई जाने वाली आम पत्नियों की एक अच्छी अनुकृति बन गई होती। मैं शुरू से ही इतनी त्रस्त और अज्ञानी थी कि न यह जानती थी कि घर को सुचारु रूप से कैसे चलाया जाता है, न मुझे हाथ रोककर खर्चा करना ही आता था। मुझे कभी जेब खर्च नहीं मिलता था; मैंने तो कभी अपने लिए एक जोड़ी दस्ताने तक खुद नहीं खरीदे थे, फिर भी मैं चाहती थी कि अपन नये दायित्व का निर्वाह ठीक से कर सकूँ, घर में जो कुछ करना है उसे झटपट करके अपनी प्यारी किताबों में खो जाऊं। मां की याद बहुत आती थी, लेकिन उनके बारे में बात मैं कम ही करती थी क्योंकि उनको वहां बुलाने की चर्चा करते ही घर में ईर्ष्या, खीझ और तनाव भरा वातावरण छा जाता था।
>
> जो महिलायें मुझसे मिलने आतीं वे केवल बच्चों और नौकरों के बारे में बातें करती थीं जिससे मैं बुरी तरह ऊब जाती थी और जो कुछ मेरे जीवन में महत्वपूर्ण था—धार्मिक, विश्वास, राजनीति, विज्ञान उसमें उन्हें कोई दिलचस्पी नहीं थी। वास्तव में मुझे विवाह करना ही नहीं चाहिये था क्योंकि इस कोमल, स्नेही, लचीली बालिका के अंतर में, उससे तथा उसके परिवेश से अज्ञात, एक ऐसी स्त्री—छुपी थी जो बहुत दृढ़ इच्छा शक्ति वाली थी, जिसका आत्मिक बल अभिव्यक्ति के लिए कसमसा रहा था, जो सीमाओं के प्रति विद्रोही थी

और जिसके भीतर दबा ज्वलंत आवेग फूट पड़ने के लिए छटपटा रहा था। ऐसी स्त्री गलीचे पर, आग के पास रखी महिलाओं की हत्थेदार कुर्सी पर बैठने के लिए सर्वथा अनुपयुक्त जीवनसाथी ही सिद्ध हो सकती थी।''

वैवाहिक जीवन की गाड़ी जैसे–तैसे चलती रही – थोड़ा गृहस्थी का दायित्व, थोड़ा सेवा कार्य थोड़ा बहुत पत्र पत्रिकाओं में लिखना पढ़ना और सामाजिक हलचल में थोड़ी दिलचस्पी । मन के एकाकीपन को दूर करने के लिए वे लघु कथायें और संतों की जीवनियाँ लिखने लगीं। जब उनकी ये रचनायें प्रकाशित हुई और उन्हें उसका पारिश्रमिक मिला तो उन्हें बहुत ही सुख मिला क्योंकि उनके द्वारा अर्जित यह पहली धनराशि थी। यह सोच कर भी उन्होंने अपार हर्ष और संतोष का अनुभव किया कि उन्हें लेखिका होने का गौरव प्राप्त हो गया है ।

सन 1869 में उनके एक पुत्र हुआ और सन 1870 में पुत्री । बच्चों के आनंददायी संसार में वे और सब कुछ भूल गईं । सन 1871 में दोनों बच्चों को कूकुरखांसी हो गई। दोनों को बहुत कष्ट था लेकिन नन्हीं मेबिल को देख कर तो लगता था जैसे वह बच ही नहीं पायेगी। उनसे अपनी प्यारी बेटी का कष्ट देखा नहीं जाता था । वे रात दिन भगवान से यही प्रार्थना करती कि या तो इसे एकदम स्वस्थ कर दो या फिर एकदम मुक्ति ही दे दो । लेकिन बच्ची एक लंबे अर्से तक उसी तरह कष्ट झेलती रही । डाक्टर के अनुसार उसके बचने की कोई आशा नहीं थी। वे घंटों बिना हिलेडुले उसे गोद में लिये बैठी रहतीं जिससे हिलते ही कहीं उसे खांसी का दौरा न पड़ जाये । डॉ. विंटरबायम ने जीवन के अंतिम क्षणों में मेबिल का कष्ट कम करने की दृष्टि से उसे एक बूंद क्लोरोफार्म सुंघा दिया । वही उसके लिये संजीवनी का काम कर गया । बच्चे धीरे धीरे स्वस्थ होने लगे किंतु इस बीच स्वयं उनका स्वास्थ्य बुरी तरह गिरता गया । बाद के तीन साल दो माह उनके लिये बहुत ही संघर्षपूर्ण रहे । वे एक आस्थावान ईसाई से लोक सेवा को समर्पित नास्तिक बन गईं । उन्हीं के शब्दों में :

"जिसने स्वयं कभी इस स्थिति का नहीं झेला, वह यह कभी नहीं जान सकता कि धर्म में गहरी आस्था रखने वाली

आत्मा को संशय कितनी भयंकर यातना देता है । दूसरी कोई पीड़ा इतनी भयावह नहीं हो सकती, इतना कष्ट नहीं दे सकती अपने बोझ से चकनाचूर नहीं कर सकती। लगता है जैसे अब नौका डूब रही है । दूसरे छोर पर निरंतर चमकने वाली सुखद ज्योति, जिसे संसार का कोई तूफान धुंधला नहीं कर सकता, बुझकर जीवन को पल पल महसूस होने वाली निराशा में इस तरह डूबा देती है कि उससे भय लगने लगता है केवल बौद्धिक और नैतिक अनिवार्यता ही धर्मपरायण व्यक्ति के मन में संशय उत्पन्न कर सकती है क्योंकि वह प्रश्नचिह्न भूकंप के धक्के की तरह आत्मा की आधारशिला को ही झकझोर डालता है, सूने आकाश में जीवन का कोई संकेत नहीं है, अधियारी रात में प्रकाश की कोई किरण नहीं, मौत जैसे सन्नाटे को तोड़ती हुई कोई आवाज नहीं, बचाने के लिए आगे बढ़ा कोई हाथ नहीं।''

शायद ईश्वर को उनके माध्यम से ही हजारों निर्धन, असहाय और शोषित लोगों को पशुवत जीवन जीने से उबारना था । श्रीमती बंसेंट उनकी वाणी बनीं। उनके दुखों की गाथा वह अपनी सशक्त लेखनी से समाज के सामने लाने लगीं।

जब कोई व्यक्ति निःस्वार्थ भाव से दूसरों की सहायता करना चाहता है तो वह उन अन्य समर्थ व्यक्तियों को भी अपना सहायक पाता है, जो इसी लक्ष्य को लेकर वर्षों से संघर्षरत है, जो पाखण्ड और झूट के विरूद्ध, अन्याय और शोषण के विरूद्ध डट कर खड़े होना चाहते हैं। उस समय वे यह नहीं देखते कि उनक साथ दूसरा और कौन है, वे यह भी नहीं सोचते कि जो अपनी दो जून की रोटी भी मुश्किल से जुटा पाता है वह उतना धन कहां पायेगा जिससे वह दूसरों की सहायता के लिये कोई ठोस कदम उठा सके । केवल मनोबल के सहारे वे व्यक्ति की स्वतंत्रता के लिए, उसे उचित अधिकार दिलवाने के लिए, उसके दुख दर्द बांटने के लिये उसके साथ हो लेते हैं।

इस बीच वह निरन्तर यही प्रयास करती रहीं कि अपनी शंकाओं का समाधान पा सकें । इस दिशा में वह रेवरेंड चार्ल्स पूसे, डा. लौरिस्टन विन्टरबाथम, चार्ल्स वायसे, श्रीएवं श्रीमती टामस स्कॉट आदि अनेक

जानकार लोगों के साथ अपनी शंकाओं के विषय में विचार–विनिमय करती रहीं किन्तु कहीं भी संतोषजनक समाधान नहीं पा सकी। निराशा के क्षणों में उन्होंने क्लोरोफ़ार्म पी कर आत्महत्या तक करनी चाही किंतु तभी जैसे किसी रहस्यमय, स्पष्ट, दृढ़ स्वर ने उन्हें रोकते हुए कहा, "कायर ! सपने तो तुम शहदत के देखती रही हो लेकिन यातना के कुछ वर्ष भी तुमसे काटे नहीं कटते ? अपनी इस नासमझी पर उन्हें बहुत लज्जा का अनुभव हुआ और उन्होंने क्लोरोफ़ार्म की बोतल बाहर बगीचे में फेंक दी।

सन् 1873 में उनका वैवाहिक सम्बन्ध अंतिम रूप से टूट गया । उन्होंने ऐसा मसीह के स्मरणार्थ पवित्र भोज में सम्मिलित होना अस्वीकार कर दिया और स्पष्ट शब्दों में कह दिया कि – 'इस पवित्र भोज में भाग लेने वाले की जिस मत–विश्वास की प्रतिज्ञा करनी पड़ती हे, वह मैंमन की पूरी सच्चाई और ईमानदारी से नहीं कर सकती ! और जिस काम को करने में मेरा विश्वास साथ नहीं देता, वह मैंकबी नहीं कर सकती । उनके पति उनसे पहले से ही असंतुष्ट थे, इस बार उन्होंने स्पष्ट कह दिया कि या तो वह उनके आदेशों का पालन करें और गिरजाघर क पवित्र अनुष्ठानों में भाग लें या तुरंत घर छोड़कर चली जाये ।

ऐमिली वुड ने सुना तो अपनी बेटी के अनिश्चित भविष्य की बात सोच कर कांप उठीं। समाज में एक युवती का सम्मानपूर्वक अकेले रहन कितना कठिन है, यह वह अनुभव से जानती थीं। फिर बच्चों का क्या होगा ? सारा कानून और सारे नयिम तो पुरुषों के ही पक्षधर हैं। बेटी के घुटनों पर अपना सफेद बालों वाला सिर टिका कर उन्होंने कहा,

"एक बार फिर सोच लो बेटी । कैसे तुम अपना निर्वाह करोगी ? कैसे बच्चों के विना जी सकोगी ? कैसे अपने ऊपर अकारण उठी उंगलियों का सामना कर सकोगी ?"

इतना कमजोर ऐनी ने कभी महूसस नहीं किया था । संसार में जो उनको सबसे अधिक प्रिय है, वह उसी को आहत कर रही थी किंतु उन्होंने मां को बांहों में भरते हुए कहा,

''मुझे झूठ के सहारे जीने को मत कहो मां ! अगर मैंने ऐसा किया तो अपने को तुम्हारी बेटी कहने के योग्य नहीं समझूंगी ।''

कानून ने श्रीमती ऐनी बेसेंट के बेटे को उसके पिता के संरक्षण में दे दिया और बेटी को मां को सौप दिया । पास न कोई पूंजी, न निश्चित आय का कोई साधन। बेटे की याद आती तो रात–रात भर करवटें बदलते बीत जाती; लगता अभी वह बाहर से उछलता–कूदता आएगा और उनसे लिपट जाएगा, अपनी मनपसंद चीजों की फरमाइश करेगा और उन्हे लाकर मेज पर रखने तक खुद वहां से गायब हो जायेगा । एकांत में उसकी स्मृतियाँ तथा मां और मेबिल के सामने दृढ़ और सामान्य लगने का प्रयास ।

विचारों की स्वतत्रता का उन्होंने क्या मूल्य नहीं चुकाया ? घर द्वारा धर्म, सभी कुछ छोड़कर वह आजीविका की तलाश करने लगीं। एक प्रतिष्ठित कुल की 25 वर्षीया युवती के लिये कोई सरल काम न था । उस समय उनकी नाममात्र की जो मासिक आय थी उसके सहारे सम्मानपूर्वक भूखे मरना ही संभव था उसी आय में उन्हें अपनी बेटी का लालन–पालन भी करना था । उन्हीं के शब्दों में –

> ''घर, मित्र, सामाजिक प्रतिष्ठा सब कुछ दांव पर लगा कर मैंने जिस स्वतंत्रता का मूल्य चुकाया, उसके लिमने के बाद मैं सोचती रही कि अब इसका करुं क्या ? मै अपने भाई के साथ रहने की व्यवस्था कर सकती थी यदि मै अपने नास्तिक मित्रों का साथ छोड़ देती और खुद भी मौन रह सकती । लेकिन अपने आपका फिर से जंजीरों में जड़कने का मेरा कोई इरादा न था । अपनी अनुभवहीनता के बावजूद मैंने कुछ न कुछ काम खोज निकालने का निश्चय किया किंतु वह काम हो क्या, बस यही समझ में नहीं आ रहा था। मैंने इस प्रकार के कामों का सुझाव देने वाली तमाम एजेंसियों को कई शिलिंग भेजे और समान रूप से असफल रही । सिलाई कढ़ाई का काम करके देखा तो कई हफ्ते की मेहनत के बदले मिले कुल 4 शिलिंग 6 पेंस । बर्मिंघम की एक सलाह देने वाली फर्म ने अपनी फीस वसूल करने के बाद एक पेंसिल केस भेज दिया और लिख दिया कि ऐसी ही छोटी–छोटी चीजें अपने मित्रों के हाथ बेचकर

आप अपनी आमदनी बढ़ा सकती है।"

श्रीमती बंसेंट के सामने यह स्पष्ट था कि उन्हें एक छोटा सा घर तो बनाना ही होगा जहां उनकी बेटी, मां और वह शांति से रह सके। शेरवुड में उनके परम हितैषी स्काट दम्पत्ति के घर के पास ही ऐसा एक घर था, ही लेने का निश्चय किया था। इस बीच कोई काम या नौकरी तो करनी ही थी जिससे खर्चे में कटौती करके मकान का मूल्य चुकाया जा सके। ऐनी की दादी ने लिखा कि वह चाहें तो उनके पास फोकस्टोन आकर काम की तलाश कर सकती है। उन्होंने वहां जाकर पता किया। वहां के एक पादरी को अपने बच्चों के लिये गवर्नेस की जरूरत थी। श्रीमती बेसेंट ने यह काम स्वीकार कर लिया। बाद में जाना कि पादरी महोदय बाबर्ची, नर्स, परिचारिका और गवर्नेस सबका काम एक ही व्यक्ति से लेना चाहते थे। और वेतन ? वेतन के नाम पर उनके और उनकी बेटी मेबिल के लिए केवल आवास और भोजन की व्यवस्था। इतना ही नही, दुर्भाग्य से कुछ ही समय बाद पादरी के बच्चों की छूत से फैलने वाला एक खतरनाक रोग हो गया। सुरक्षा की दृष्टि से ऐनी बेसेंट ने मेबिल को तुंरत अपनी मां के पास भेज दिया और खुद दिन रात एक करके उन बच्चों की सेवा टहल करने लगीं। वह उनके लिए पथ्य तैयार करतीं, दवा पिलातीं, माथे पर ठंडे पानी की पट्टी रखतीं और उन्हें कहानियाँ सुनातीं। बचे हुए समय में वह घर का काम—काज संभालतीं।

सन 1874 के बसंत में उन्हें मां और मेबिल के साथ नारवुड के अपने नये घर में जाना था। इसके लिये मां बेटी ने उत्साहपूर्वक जाने कितनी योजनायें बनाई थीं। किंतु तभी शहर से उन्हें तार मिला कि मां गंभीर रूप से बीमार हैं। वहां पहुंच कर ऐनी ने देखा कि उनकी दशा बहुत चिंताजनक है। मरने से पूर्व उन्होंने होली कम्यूनियन (ईसामसीह को समर्पण) की इच्छा प्रकट की। इसके लिये उनकी एक शर्त थी कि इसमें उनकी बेटी भी भाग ले क्योंकि "अगर मुक्ति के लिए यह समर्पण आवश्यक है तो भी मेरी प्यारी ऐनी अगर छूट जाएगी तो मैं इसे स्वीकार नहीं करूंगी। अकेली मुक्ति पाने की अपेक्षा, मैं उसके साथ साथ इस सौभाग्य से वंचित रह जाना ज्यादा पसंद करूंगी।"

मां की अंतिम इच्छा की पूर्ति के लिये ऐनी कुछ भी करने को तैयार थीं लेकिन उनके ईसाई न होने के कारण कोई पादरी यह संस्कार कराने के लिये तैयार न हुआ। अंत में उन्हें वेस्टमिंस्टर के उदार विचारों वाले डीन स्टैंली का ध्यान आया। श्रीमती ऐनी बेसेंट ने संकोच के साथ सारी स्थिति उनके सामने स्पष्ट कर दी और सांस रोक कर उनके उत्तर की प्रतीक्षा करने लगीं। डीन महोदय ने इसके लिए यह कहते हुए सहर्ष अपनी स्वीकृीत दे दी कि मेरे लिए सिद्धान्तों की अपेक्षा आचरण व्यवहार कहीं अधिक महत्वपूर्ण हैं। होली कम्यूनियन से भी अधिक अपने उपदेश से और ऐनी की सत्यनिष्ठा की सराहना करके उन्होंने एमिली के मन का सारा बोझ दूर कर दिया। मृत्यु के समय उनके चेहरे पर अपूर्व शांति थी।

ऐनी बेसेंट का संसार सूना हो गया। घर में अगर मेबिल की दूधिया हंसी न होती, उसके नन्हें पैरों की थिरकन न होती, अतीत के दायरे से वाहर खींच लाने वाली भोली–भाली बातें न होतीं, तो उनके लिए उस घर में एक पल भी रुकना कठिन हो जाता। फिर, अभी कोई ऐसा काम भी नही मिल पाया था जिससे कुछ निश्चित आय हो पाती। बेटी के खर्चों पर कटौती वह नहीं करना चाहती थीं। उसकी और घर गृहस्थी की देखरेख के लिये जो परिचारिका मेरी थी वह इतनी सुघड़ और ममतामयी थी कि बहुत थोड़े में काफी अच्छी व्यवस्था कर लेती थी। लेकिन उस थोड़े से को भी जुटाने की समस्या तो थी ही।

किसी–किसी दिन में घर में दो ही लोगों भर का भोजन होता जिसे वह मेरी और मेबिल के लिए छोड़ देती और घर में कह जाती कि वह शहर में ही भोजन कर लेंगी यद्यपि वह उस समय भी जानती थी कि कुछ भी खरीदने के लिए उनके पास पैसे ही नहीं है।

श्रीमती बेसेंट स्वतंत्र विचारक श्री टामस स्काट के लिए पुस्तिकायें लिखती रहती जिनसे उन्हें कुछ गिनी मिल जाती थीं जो उनके लिए उस समय बहुत मूल्यवान थीं। वह ब्रिटिश म्यूजियम में पढ़ने के लिये जाया करती थीं। संघर्ष के उन दिनों में श्री और श्रीमती टामस स्काट का घर ही ऐसा था जहां उनका हर समय स्वागत होता और श्रीमती स्काट उन्हें

बिना कुछ खिलाये पिलाये जाने ही नहीं देती थीं।

अनेक बार जब वह बाहर से निराश थकी हारी, भूखी प्यासी लौटती तो खिड़की से प्रतीक्षा में झाँकता एक प्यासा सा चेहरा दूर से ही दिखाई पड़ जाता—घुंघराले ललछौहें सुनहरे बाल, हंसती हुई आंखें, मधुर संतोषी स्वभाव। उस एक झलक से ऐनी अपनी सारी निराशा, सारी चिंता, सारे दुख भूल जातीं। बाहें फैलाये, हंसती खिखिलाती बिटयिा के पीछे भीतर बाहर दौड़ने और उसे न पकड़ पाने का नाटक करती मां को लगता कि जैसे उसके पंखों में अपार शक्ति आ गई है और वह अपनी इस नन्हीं चिरैया को लेकर सामने फैले आकाश में जाने कितनी दूर का सफर तय कर सकती है।

जीवन संघर्ष की दहलीज़ पर

जीवन संघर्ष की दहलीज़ पर

''लोग मौन हैं। मैं मौन लोगों की वाणी बनूंगी । मैं गूंगों की ओर से बोलूंगी। मैं बड़ों से छोटों की और शक्तिशाली से दुर्बलों की वकालत करुंगी।''

ऐनी बसेंट

जीवन में बहुत कुछ खोने और बहुत कुछ झलेने के बावजूद श्रीमती ऐंनी बेसेंट निरंतर अपनी बौद्धिक क्षमता और ज्ञान बढ़ाने में जुटी रही । एक दिन उनकी एक प्रिय मित्र श्रीमती कानवे ने पूछा, ''ऐनी क्या तुम कभी हाल ऑफ साइंस गई हो?''

उन्होंने उत्तर दिया, नहीं कभी नहीं गई। सुना है, ब्रैडला बहुत रुखे वक्ता है ।'' वे आश्चर्य भरे स्वर में बोली, ''अरे नहीं वह तो अद्‌भुत वक्ता है । शायद जान ब्राइट को छोड़कर जनता पर इतना गहरा प्रभाव और किसी का नहीं है ।'' बात आई गयी हो गई ।

कुछ ही दिन बाद 19 जुलाई 1874 को उन्होंने एक दूकान पर नेशनल रिफ़ार्मर की नई प्रति रखी देखी और उसे तुंरत खरीद लिया । पढ़कर बहुत प्रभावित भी हुईं। उसमें एक लेख नेशनल सेक्युलर सोसाइटी पर भी था जिसे पढ़कर उन्हें ज्ञात हुआ कि वह स्वतंत्र चिंतकों की एक संस्था है और उसके प्रधान का नाम चार्ल्स ब्रैडला है । उन्होंने उस संस्था की सदस्यता ग्रहण कर ली । रविवार की शाम को जब सदस्यता का प्रमाण पत्र लेने वह हाल ऑफ साइंस में गई, जहां चार्ल्स ब्रैडला का भाषण था, तो पाया कि कक्ष में उनके इतने प्रशंसक भरे थे

कि खड़े होने तक की जगह नही थी । उन्होंने यह भी महसूस किया कि वास्तव में वे अद्‌भुत वक्ता है। भाषण दे चुकने के बाद वह हाथ में कुछ प्रमाण पत्र लिये हुए उनके पास आये और उनका प्रमाण पत्र उन्हें पकड़ाते हुए पूछा, "श्रीमती ऐनी बेसेंट ?"

उनसे मित्रता होने के काफी दिन बाद श्रीमती बेसेंट ने उनसे पूछा कि बिना किसी पूर्व परिचय के वे उन्हें पहचान कर सीधे उनके पास चले कैसे आये ? श्री ब्रैडला ने हंसकर उत्तर दिया, "पता नहीं । कक्ष में एकत्रित महिलाओं के चेहरों पर नजर डालने के बाद मुझे लगा कि उस भीड़ में आप ही ऐनी बंसेंट हो सकती हैं।"

उस दिन जिस मैत्री की नींव पड़ी, वह जीवन पर्यन्त बनी रही । चार्ल्स ब्रैडला श्रीमती बेसेंट से कहा करते थे, "किसी विषय पर अपनी राय बनाने से पहले वह सब कुछ जान लेना चाहिए जो उसके पक्ष या विपक्ष में विद्वानों ने कहा है । उन मतों पर ध्यान नहीं देना चाहिए जिनमें आपके विचारों की अनुगूंज हो । उन मतों की ओर ध्यान दीजिए जो आपसे असहमति प्रकट करते हैं । तभी आप सत्य का वह अंश ग्रहण कर सकेंगी जो पहले पकड़ में नहीं आया था।" श्रीमती बेसेंट से अपनी मित्रता के दौरान वे हमेशा उनके कठोरतम आलोचक भी रहे और बहुत अच्छे मित्र भी। उनके लेखन में तीखी से तीखी बात कहते हुए भी, जो आत्मसंयम मिलता है, वह भी ब्रैडला की ही देन है ।

जनवरी सन 1875 में श्रीमती बेसेंट ने निश्चय किया कि अब वे समाज सुधारक और स्वतंत्र चिंतक के रूप में अपने लेखन और भाषण दोनों माध्यमों से प्रचार कार्य पर बल देंगी । अपना पहला भाषण उन्होंने स्त्रियों की राजनीतिक स्थिति पर दिया था । भाषण देने के लिये जाने से पूर्व घबराहट के मारे उनके पैर कांप रहे थे और दिल बैठा जा रहा था उनके सामने यह तसवीर खिंच गई कि लाइन के लाइन उत्सुक श्रोता

प्रतीक्षा में मंच की ओर देख रहें है और वक्ता मौन खड़ा है । पर उनके आश्चर्य की सीमा न रही जब उन्होंने पाया कि बोलना शुरू करते ही उनकी सारी घबराहट दूर हो गई और अंत तक वे पूरे आत्मविश्वास के साथ विषय के हर पहलू पर प्रकाश डालती रहीं ।

इस प्रकार की चिंता और घबराहट उनके लिए नई नहीं थी । बचपन से ही, समय समय पर, वह इसे महसूस करती रही थी। इस संदर्भ में आत्मविवेचन करते हुए उन्होंने अपनी आत्मकथा में लिखा है –

> ''मै ंदुर्बलता और दृढ़ता का विचित्र संगम रही हूँ और अपनी इस दुर्बलता का मुझे बहुत मूल्य भी चुकाना पड़ा है । जब मैं छोटी बच्ची थी तब सबसे इतना झेंपती थी कि अगर मेरे जूते का फीता भी खुल जाता था तो मुझ लगता था कि हर किसी की दृष्टि उसी फीते पर लगी है । जब मैं ंकुछ बड़ी हुई तो अपरिचितों से दूर भागती थी और मुझ लगता था कि मुझे कोई पसंद नही करता और मेरा कहीं भी स्वागत नहीं है । यह भावना इतनी गहरी थी कि अगर कभी कोई मुझसे अच्छी तरह बात करता तो मैं उसके प्रति गहरी कृतज्ञता अनुभव करती थी । गृहस्वामिनी के रूप में अपने नौकरों से इतना डरती थी कि किसी से कुछ भूल हो जाने पर उसे डाँटने की अपेक्षा उस काम को ही लापरवाही से होने देती थी । मंच पर भाषण देते समय और बहस करते समय मैं पूरे उत्साह और जोश के साथ बोलती थी, लेकिन होटल में घंटी बजाकर वेटर से कुछ मंगवाने के स्थान पर मैं उस चीज़ के बिना ही काम चला लेती। मंच पर अपनी किसी मान्यता की रक्षा के लिये मैं चुनौती स्वीकार करने से नहीं हिचकती लेकिन घर में झगड़े या असंतोष से भागती हूँ।
> सारांश यह है कि निजी जीवन में मै मन से कायर हूँ और सार्वजनिक जीवन में एक जुझारू योद्धा हूँ।''

वे जो कुछ लिखती या कहती थीं, उसके लिए भरपूर तैयारी भी करती थी। उनकी दृष्टि में जनता के विचारों या भावनाओं को मोड़ना

चाहने वाले व्यक्ति के ऊपर बहुत बड़ी जिम्मेदारी होती है क्योंकि उसकी बात हजारों लोगों तक पहुंच कर उन्हें उद्वेलित करती है । उन्होंने निश्चय कर लिया था कि स्वयं को इस बड़े उत्तरदायित्व को भली प्रकार निभाने योग्य बनाने में वह कोई भी प्रयास उठा नहीं रखेंगी । वे मनोयोग से अध्ययन करती थीं, अपनी भाषा को बराबर निखारते रहने का प्रयास करती थीं, और अपने ज्ञान कोष को निरंतर समृद्ध बनाती रहती थीं। उनका कहना था, "मैं कह सकती हूँ कि मैंने खूब लिखा है और खूब भाषण दिये है लेकिन उससे कहीं अधिक मैंने अध्ययन किया है और सोचा है ।"

औरों के लिए जीने का बहुत बड़ा मूल्य चुकाना पड़ता है । जो लोग सच्चाई को जिस रूप में देखते है उसी रूप में व्यक्त करते हैं, उन्हें कांटों पर चल कर अपने लक्ष्य तक पहुंचना पड़ता है । श्रीमती बेसेंट ने नार्थम्बरलैंड और डरहम में जगह-जगह भाषण देने में आठ दिन लगाये और कुछ पाने के स्थान पर ग्यारह शिलिंग अपने पास से ही खर्च किये, फिर भी उन्हें वहाँ जाना बहुत सार्थक लगा क्योंकि वहां की खानों में काम करने वाले अनपढ़, गरीब मजदूरों ने उनका भरपूर आदर सत्कार किया और अपनी समझ और सूझबूझ से प्रभावित भी किया। सन 1875 में लीसेस्टर में उनके एक विपक्षी ने उन पर यह आरोप लगाया –"एलीमेंट्स ऑफ सोशल साइंस' नामक पुस्तक आपकी लिखी हुई हैं और वही आप लोगों की बाइबिल है क्योंकि आप लोग मुक्त प्रेम में विश्वास रखते हैं और विवाह के पवित्र संस्कारों को समाप्त कर देने के पक्ष में है। इसी कारण आपने अपने पति और परिवार को छोड़ दिया है। आपके साथी भी ऐसे ही विचारों के लोग हैं। चार्ल्स ब्रैडला ने अपनी पत्नी और दोनों बच्चियों को उनके माता-पिता के पास छोड़ रखा है और खुद अकेले आराम से शहर में रहते हैं।"

श्रीमती ऐनी बेसेंट को उस पुस्तक के बारे में पता तक नही था फिर भी इस तरह की निराधार बातें सुनकर उन्हें बहुत दुःख हुआ । लंदन वापस आने पर खोज की तो पता चला कि वह एक डाक्टर द्वारा लिखी गयी एक उपयोगी पुस्तक है जिसमें इस बात पर बल दिया गया है कि विवाहित लोगों को स्वेच्छा से अपने परिवार की सीमा अपनी आय के

अनुरूप रखनी चाहिए । श्री ब्रैडला ने उसकी समीक्षा करते हुए लिखा था – "यह पुस्तक ईमानदारी और सद्‌भावना के साथ लिखी गई है और इसमें जनसंख्या के नियमों की व्याख्या की गई है।"

चार्ल्स ब्रैडला ने जीवन काल में अपने पारिवारिक जीनव के बारे में कभी किसी को कुछ नहीं बताया । उन पर तरह तरह के आरोप लगते रहे और वे चुपचाप उन्हें सहते रहे । यह तो उनकी मृत्यु के बाद उनकी बड़ी बेटी ने श्रीमती बेसेंट को बताया कि उनका पारिवारिक जीवन कितना दुखमय था । उनकी पत्नी को शराब की लत पड़ गई थी। उन्होंने उसे सुधारने की भरपूर कोशिश की लेकिन उन्हें कोई सफलता न मिली । हार कर उन्होंने पत्नी को उसके माता पिता के पास गाँव में छोड़ दिया, जहाँ उसके साथ उनकी दोनों पुत्रियाँ भी रहीं, और वह स्वयं उनकी आर्थिक सहायता करने के लिए शहर में रह कर श्रम करके धनोपार्जन करते रहे । लोग देख रह थे कि उनकी सेवा–भावना उन्हें कितना लोकप्रिय बनाये दे रही है । राजनीतिक क्षेत्र में जब वे उनका कुछ न बिगाड़ सके तो सामाजिक स्तर पर उन्हें कलंकित करने पर तुल गये । इस तरह का विरोध उनके सामने बहुत लंबे अर्से तक बना रहा । ऐसी ही एक घटना का स्मरण करते हुए श्रीमती बेसेंट ने लिखा है –

> "एक बार कांग्लिटन में श्री चार्ल्स ब्रैडला एक हॉल में भाषण दे रहे थे । वहाँ की खिड़कियों को लोगों ने पत्थर फेंक–फेंक कर तोड़ डाला । एक पत्थर आकर मेरे सिर पर भी लगा । हमें डेढ़ मील चल कर अपने आवास तक जाना था और बाहर भीड़ पत्थर लिये, गालियाँ बरसाती पीछा करने को तैयार खड़ी थी । जब मैं भाषण देने के लिये खड़ी हुई तब बरबरी नामक एक पहलवान ने चिल्ला कर कहा, "इसे बाहर कर दो।" श्री ब्रैडला उस समय सभापति थे । वह उठे, पहलवान ने उन्हें गिरा देने की कोशिश की तो उन्होंने उसे उठा कर पटक दिया और बाद में पुलिस के हवाले कर आये । मैने भाषण पूरा किया । हाल के बाहर निकलने पर पथराव तो हुआ ही ।"

श्रीमती बेसेंट के ऊपर इन घटनाओं का कोई प्रभाव नही पड़ता था ।

उन्होंने खान के मजदूरों और माचिस बनाने वाली स्त्रियों के लिए सुविधाओं की माँग की, गोदी मजदूरों के अधिकारों के लिये लड़ी, बुनकरों और जूते बनाने वालों की पक्षधर बनीं, समाज द्वारा सताई हुई स्त्रियों की सुरक्षा के लिये आवाज बुलंद की और उनके सम्मानपूर्वक जीने के लिये साधन जुटाये, बच्चों से मजदूरी करवाये जाने का विरोध किया और शासन द्वारा उनकी शिक्षा का प्रबंध करवाये तथा उनकी भोजन व्यवस्था की ओर ध्यान दे, इसके लिए आंदोलन किया, तथा फैक्ट्रियों में ऐसे उपकरण लगवाये जाने की व्यवस्था करवाई जिससे श्रमिक अपंग होने से बचे रह सकें । इसके लिए उन्हें चाहे जितने विरोधों का भी सामना करना पड़ा, भूखे रह कर भी दिन काटने पड़े, पर हर बार अंत में विजयश्री उन्हें ही प्राप्त हुई। धीरे–धीरे. गरीबों के मसीहा के रूप में उनकी इतनी साख बनने लगी कि उनकी सहायता के लिये लोग लाखों का चंदा उन्हें भेजने लगे । अपने निजी काम के लिए उनके पास समय ही नहीं बचता था इसलिए उनकी अपनी स्थिति तो नहीं सुधरी पर जो बिना भोजन, बिना शिक्षा और बिना मकान के जी रहे थे, उनकी सहायता के लिए वे खुल कर खर्च करने लगीं ।

सन् 1877 में एक ऐसे संघर्ष की शुरूआत हुई जिसमें विजयी होते हुए भी श्रीमती बेसेंट का मन असीम पीड़ा और कड़वाहट से भर उठा । सन 1835 के आसपास डा. चार्ल्स नोल्टन ने एक पुस्तिका प्रकाशित की थी। जिसमें उन्होंने दम्पत्ति को यह परामर्श दिया था कि कैसे अपने परिवार को वे अपनी आय के अनुरूप सीमित कर सकते हैं। लगभग चालीस वर्ष तक वह पुस्तिका बिकती रही और समाज द्वारा स्वीकृत रही।

फिर ब्रिस्टल के एक बदनाम पुस्तक विक्रेता ने कुछ आपत्ति जनक चित्र लगा कर उस पुस्तिका की प्रतियाँ बेचनी शुरू कर दी। 'नेशनल रिफार्मर' के तथा चार्ल्स ब्रैडला और ऐनी बेसेंट की पुस्तकों के प्रकाशक ने डॉ. नोल्टन की पुस्तिका की कुछ प्रकाशित प्रतियाँ खरीद ली थीं। उस पर मुकदमा चला और उसे सज़ा हो गई। श्री चार्ल्स ब्रैडला और श्रीमती बेसेंट ने उससे अपनी पुस्तकें वापस ले लीं। उन्होंने नोल्टन पुस्तिका को फिर से अपने मौलिक रूप में बेचने का निश्चय किया क्योंकि उनकी मान्यता थी कि यह प्रतिबंध विचार स्वातंत्रय पर एक आघात है ।

एक छोटी–सी दुकान किराये पर ले ली गई और पुलिस को सूचना दे दी गई कि अमुक पुस्तिका की बिक्री अमुक दुकान पर की जायेगी ।

इस चुनौती में निहित संकट दोनों के सामने स्पष्ट था । श्री ब्रैडला जानते थे कि उनकी पार्लियामेंट की सदस्यता खतरे में पड़ सकती है । श्रीमती बेसेंट के मन में भी यह आशंका थी कि उन्हें हर प्रकार से बदनाम किया जायेगा और इसका लाभ उठा कर पादरी बेसेंट उकी बच्ची तक को दुबारा छीनने का प्रयास कर सकते हैं, किंतु उन्होंने हमेशा सामाजिक कल्याण को निजी सुख से अधिक महत्व दिया ।

ब्रिस्टल वाले काण्ड के बाद से न्याय की दृष्टि से इस पुस्तिका का छापना और बेचना एक दण्डनीय अपराध था अतः उन दोनों को ही गिरफ्तार कर लिया गया और उन पर मुकदमा चलाया गया । मुकदमे की सुनवाई इंग्लैंड के चीफ जस्टिस ने एक विशेष जूरी की सहायता से की । चीफ जस्टिस ने उनके साहस की प्रशंसा की लेकिन जूरी की यह राय थी कि इस पुस्तिका से जनता के चरित्र पर बुरा प्रभाव पड़ता है । फलतः उनको छह छह महीने के कारावास का दण्ड दिया गया । दो–दो सौ पौंड जुर्माना भी किया गया । उन्होंने इस फैसले के विरूद्ध अपील की और यह सज़ा रद्द हो गई।

कुछ समय बाद श्रीमती बेसेंट ने इस पुस्तिका पर आधारित एक नई पुस्तिका लिखी जिसका नाम था 'लॉ ऑफ पापुलेशन' । जनसाधारण की आर्थिक, सामाजिक और नैतिक दशा सुधारने के लिए जन–संख्या पर नियंत्रण आवश्यक है, इस उद्‌देश्य से यह पुस्तक तो उन्होंने लिख दी, किंतु इससे उनके पति के हाथ मजबूत हो गये । पहले भी एक बार जब उनकी बेटी मेबिल न्यायालय द्वारा निर्धारित वर्ष में एक महीने की अवधि के लिए पिता के पासगई हुई थी तब उन्होंने उसे माँ के पास वापस न भेजने के इरादे से कहीं छिपा दिया । श्रीमती बेसेंट ने जब उन्हें कानून का सहारा लेने की धमकी दी, तब कहीं उसे वापस भेजा।

अब स्थिति कुछ बदल गई थी । एक तो श्रीमती बेसेंट अपने को नास्तिक घोषित कर ही चुकी थी, दूसरे जनसंख्या का कानून और

नोल्टन पुस्तिका को लेकर भी लोग उनके पक्ष और विपक्ष में बंट गये थे। इससे लाभ उठा कर पादरी बेसेंट ने एक बार फिर यह माँग की कि नास्तिक माँ मेरी बेटी को वह धार्मिक शिक्षा और संस्कार दे ही नहीं सकती जो एक ईसाई बच्ची को मिलने आवश्यक है अतः उसे मेरे संरक्षण में दे दिया जाये। यह याचिका सुनवाई के लिये सर जार्ज जैसेल के सामने आई जिनकी अनुदारता और कट्टरता से सभी परिचित थे। पहले तो श्रीमती ऐनी बेसेंट को अपनी पैरवी खुद करते देख कर ही उन्होंने व्यंग्य किया फिर अंत में यही निर्णय दिया कि यद्यपि वह बहुत अच्छी तरह से बच्ची को पढ़ा–लिखा रही हैं और पाल पोस रही है फिर भी वह नास्तिक हैं और बच्ची को अगर धार्मिक शिक्षा न मिली तो उसका सर्वनाश निश्चित है, इसलिए उसे और एक दिन भी माता के संरक्षण में नहीं छोड़ा जा सकता।

मेबिल गंभीर रूप से बीमार हो चुकी थी और अभी बहुत ही दुर्बल थी। श्रीमती बेसेंट ने प्रार्थना की कि बीमारी से पूरी तरह स्वस्थ हो जाने पर ही उसे पिता के पास भेजा जाय किंतु श्रीबेसेंट ने एक संदेशवाहक द्वारा दुर्बल, डरी हुई, रोती–चिल्लाती और माँ से लिपटती हुई बच्ची को खींच कर अपने घर मंगवा लिया।

रात–रात भर श्रीमती बेसेंट को नींद न आती। वे उद्विग्न होकर खाली कमरों में चक्कर काटती रहतीं। वह जाड़े की धूप सा उजाला जो उनकी बिटिया के खिलखिलाने से घर में बिखर जाता था, अब नहीं रहा। उन्हें दूर से आते देखकर पुलकित हो उनकी आरे भागते नन्हें पैरों की आहट, बगीचे से पुकारता उसका मीठा स्वर, उनसे लिपटी वे दुलारभरी कोमल बाँहें, कहीं कुछ नहीं। बार–बार लगता जैसे उनकी प्यारी बेटी को कोई कठोर हाथ खींच कर ले जा रहा है और वह चीख रही है – 'मै कहीं नहीं जाऊंगी माँ ! मुझे अपने पास रोक लो !'

श्रीमती बेसेंट को अपना ही घर पराया सा लगने लगा। उसके साथ जुड़ा मोह का अंतिम बंधन भी टूट गया। कर्म क्षेत्र के तूफानी सागर में लहरों से जूझने के लिए वह कमर कस कर कूद पड़ीं।

अब उन्हें किसी तट पर वापस नहीं लौटना था।

तूफानों में तट की खोज

तूफ़ानों में तट की खोज

''क्या यह हमेशा ही होता रहेगा कि जब कोई व्यक्ति ऊपर उठ रहा हो तो उसका हर अगला कदम उसके अपने हृदय पर पड़े या उनके हृदय पर पड़े जिन्हें वह प्यार करता है?''

—ऐनी बेसेंट

एक लंबे अर्से तक तन और मन से गंभीर रूप से अस्वस्थ रहने के बाद श्रीमती ऐनी बेसेंट ने कुछ समय के लिये छूटे हुए अपने कर्म क्षेत्र को फिर से संभाल लिया। मन ज़रा थका—थका सा था लेकिन अपने दायित्व के प्रति चेतना और आगे बढ़ते कदमों की दृढ़ता पहले जैसी ही थी। वह दूने वेग से काम करने लगीं क्योंकि इसी में उनके मन को शांति मिलती थी। धार्मिक संकीर्णता, सामाजिक अत्याचार और राजनीतिक शोषण से घिरी ऐनी बेसेंट कभी एक प्रकार के अन्याय से जूझतीं, कभी दूसरे से। उनका कार्यक्षेत्र सीमाएँ नहीं जानता था। उसके विस्तार की एक झलक इंग्लैड के जाने माने समाज सुधारक जार्ज लैंसबरी के इन शब्दों से मिलती है —

> "श्रीमती बेसेंट हर सुधारवादी आंदोलन में सामने ही नज़र आती हैं। ब्रिटेन में उनकी गतिविधि के संबंध में लिखने के लिये वहां के समस्त सामाजिक तथा राजनीतिक परिवर्तनों के बारे में लिखना होगा। सन 1874 से लेकर भारत आने तक जनहित का ऐसा कोई आंदोलन नहीं था जिसमें वे अग्रणी न रही हों।"

इन संघर्षो में अपने परम हितेषी और मित्र श्री चार्ल्स ब्रैडला का सहयोग, प्रोत्साहन और परामर्श उन्हें सदैव प्रेरणा और बल देता रहता था। उन दिनों श्री ब्रैडला का संसदीय संघर्ष शुरू हो चुका था और वह बहुत लंबी अवधि तक चलता रहा। उनका निर्वाचन क्षेत्र उन्हें निर्वाचित करके अपना प्रतिनिधित्व करने के लिये भेजता था और संसद में उनके विरोधी हर बार किसी न किसी बहाने उन्हें सदन में अपनी

कुर्सी ग्रहण करने से रोक देते थे । वे धार्मिक शपथ नहीं लेना चाहते थे और सदन का मत था कि उन्हें शपथ ग्रहण के स्थान पर अभिवचन देने की अनुमति न दी जाये । इस घटना को लेकर श्रीमती बेसेंट ने एक पैम्फ़लेट लिखा 'लॉ मैकर्स एण्ड लॉ–ब्रेकर्स' (कानून बाने वाले और कानून भंग करने वाले)। जगह–जगह सभायें हुईं और सरकार की इस कट्टरता पर रोष प्रकट किया गया । बाद में सदन ने अपना निर्णय वापस ले लिया लेकिन तब तक मामला अदालत तक पहुंच चुका था । श्री ब्रैडला ने सदन में आकर ज्यों ही अपनी कुर्सी ग्रहण की कि यह प्रश्न उठाया गया कि उन्होंने बिना नियमित शपथ लिए कुर्सी ग्रहण कर ली। अंत में न्यायालय ने उनका चुनाव रद्द कर दिया। कुछ समय बाद फिर चुनाव हुआ और फिर उनके निर्वाचकों ने पहले से भी अधिक मत उनके पक्ष में देकर उन्हें पुनः निर्वाचित किया । श्री ब्रैडला ने निश्चय किया कि वे पुनः सदन में जा कर अपने वैधानिक अधिकार प्राप्त करेंगे । सदन के चारों ओर पुलिस का पहरा था ।ट्रैफलंगर स्कवायर में एक विशाल सभा हुई जिसमें देश के हर भाग से प्रतिनिधि आए और उन्होंने श्री ब्रैडला के प्रति हो रहे इस अन्याय पर रोष प्रकट किया । श्री ब्रैडला ३ अगस्त 1880 को श्रीमती ऐनी बेसेंट के साथ हाउस आफ़ कामन्स की ओर चल दिए। उन्होंने श्रीमती बेसेंट को बाहर रोक दिया और कहा, ''मुझे विश्वास है कि आप उत्तेजित जनता को शांत रख सकेंगी जिससे वह हिंसा न करने पाए।'' भीड़ निरंतर बढ़ती जा रही थी । पुलिस, जो पहले से ही चिंतित हुई [illegible] फाटक पर जमा हो रही थी । श्रीमती बेसेंट ने जब देखा कि स्थिति काबू से बाहर हो रही है तो वह भीड़ और पुलिस के बीच में आकर जनता से अनुरोध करने लगीं कि श्री ब्रैडला की इच्छा है कि वे लोग शांतिपूर्वक रुके रहें । लोग पीछे हट तो गये किंतु कुछ ने दुखी होकर कहा कि, ''अगर आप हमें जाने देतीं तो हम लोग उन्हें सदन के भीतर ही नहीं, अध्यक्ष की कुर्सी तक ले गये होते।''

इस बीच अनेक विरोधियों ने मिल कर श्री ब्रैडला को संसद से बाहर निकालने का प्रयास किया। उनके शक्तिशाली शरीर को अन्याय का डट कर सामना करने की आदत थी । वे बराबर यह प्रयास करते रहे कि कोई उन्हें अपने स्थान से हिला न सके । अंत में लोगों ने धक्के दे–दे कर

उन्हें बाहर फेंक दिया जिससे उन्हें काफी चोट आई। कई हफ्ते तक उनके हाथों में पट्टियाँ बंधी रहीं और जगह–जगह नील पड़े रहे । अस्पताल से बाहर आने पर उन्होंने सबसे पहला काम यही किया कि लोगों से शांत रहने की और दंगा न करने की अपील की। शांतिपूर्ण रह कर भी यह आंदोलन जोर पकड़ता रहा। अगले आम चुनाव में श्री ब्रैडला फिर निर्वाचित होकर आये और इस बार उन्होंने संसद में स्थान ग्रहण किया । वहां उन्होंने शपथ–विधेयक पारित करवाया जिसके अनुसार यह आवश्यक नहीं रहा कि हर व्यक्ति धार्मिक शपथ ले, अभिवचन देने से भी काम चलने लगा । स्वतंत्र विचारकों को अदालतों में जूरी बनने और गवाही देने का अधिकारी भी मान लिया गया । लेकिन श्री चार्ल्स ब्रैडला के साथ संसद की यह लड़ाई बहुत क्रूर, अवैधानिक, लंबी और थका देने वाली थी। उनका स्वास्थ्य गिरता जा रहा था । निर्दयी और स्वार्थी प्रतिद्वंदी तरह तरह के झूठे आरोप लगा लगाकर उन पर जुर्माने करवा रहे थे । जितना खर्चा उन्हें उठाना पड़ रहा था उसका अधिकांश उनके वे निर्धन मित्र, साथी और प्रशंसक मिल कर वहन कर रहे थे जिनके लिए कुछ भी देना, अपनी और परिवार की दैनिक आवश्यकताओं में से कटौती करना ही था। श्री ब्रैडला के विरोधी उन्हें बरसों हैरान करने और कष्ट देने में तो सफल रहे लेकिन अंततोगत्वा विजय चार्ल्स ब्रैडला की ही रही ।

उन दिनों विचार स्वातंत्र्य की यह हालत थी कि डॉ. एडवर्ड ब्री. ऐवलिंग ने हॉल आफ़ साइंस में श्रीमती ऐनी बेसेंट की अध्यक्षता में एक भाषण दिया और अपने निर्भीक विचारों के कारण वे लंदन अस्पताल से हटा दिए गये, यद्यपि बोर्ड ने स्वीकार किया कि उनका काम हर प्रकार से संतोषजनक माना जाता रहा था। डॉ. एवलिंग ने नेशनल रिफार्मर के लिए विज्ञान संबंधी विषयों पर अनेक महत्वपूर्ण लेख भी लिखे । उनके सहयोग से श्रीमती ऐनी बेसेंट विज्ञान का अध्ययन करने लगीं और विज्ञान की छात्रा के रूप में लंदन विश्वविद्यालय में भरती हो गई। वहां से उन्होंने विज्ञान शिक्षिका की योग्यता का प्रमाण पत्र प्राप्त किया और वहीं से बी. एस. सी की परीक्षा भी दी । डा. ऐवलिंग, श्रीमती बेसेंट श्री ब्रैडला की दोनों बेटियाँ – एलिस और हिपैटिया – तथा कुछ अन्य

सहयोगी मिल कर अनेक वर्षों तक एक साइंस स्कूल चलाते रहे। अपनी सारी शिक्षा और अनुभव के बावजूद जब श्रीमती बेसेंट, एलिस और हिपैटिया ने यूनिवर्सिटी कालेज में वनस्पति विज्ञान पढ़ने की अनुमति माँगी तब वह उन्हें नहीं दी गई, श्रीमती बेसेंट को उनके तथाकथित पापों के कारण और एलिस तथा हिपैटिया को श्री ब्रैडला की पुत्रियाँ होने के कारण !

अधिकारों के प्रति चेतना की लहर जब एक बार फैलती है तो दूर तक फैलती चली जाती है । इंग्लैंड में मजदूर आंदोलन जोर पकड़ने लगे। श्रीमती ऐनी बेसेंट क्योंकि अपने लिए यश बटोरने में नहीं, ठोस काम करने में विश्वास रखती थीं, अतः वह जाने माने समाज सुधारकों के प्रयासों में भी योगदान देने लगीं। इस बीच उन्होंने जिन समाजवादी चिंतकों तथा समाज सेवियों के साथ मिल कर काम किया, उनमें से प्रमुख थे श्री बनार्ड शॉ, डा. ऐवलिंग, श्री मोनक्योर डी. कानवे, प्रोफेसर लुडविग बुशनर, श्री एव्ज़ गूएयो और प्रोफेसर हैकेल । प्रारंभ सर जॉन लबक के उस बिल के विरोध में हुआ जिसमें युवक कर्मचारियों के लिए बारह घंटे प्रतिदिन काम करना निश्चित किया गया था। बच्चों के लिए उनके मन में बहुत मोह था । उन्होंने स्कूल बोर्ड के बच्चों के लिए निःशुल्क भोजन की मांग की । उन दिनों स्कूल बोर्ड में सार्वजनिक कार्यों के ठेकों में सस्ती से सस्ती चीज बाजार से खरीदी जाती और महंगी से महंगी बेची जाती । सरकारी विभाग मजदूरों से बहुत देर तक काम करवाते थे । और उन्हें बहुत कम वेतन देते थे । बीच में घूस और दलाली भी चलती थी । श्रीमती बेसेंट के प्रयत्नों से यह तय हो गया कि मजदूरों की यूनियन हो या न हो, सरकार और 'म्यूनिसिपैल्टी' वेतन की एक मानक दर देगी और काम के घंटों के एक मानक समय पर अमल किया जायेगा । जगह जगह काम करने वालों का शोषण हो रहा था । कमीज़ें बनाने वाली औरतों को साढ़े दस घंटे रोज़ काम करने के बाद एक दर्जन कमीजों का दस पेंस से लेकर तीन शिलिंग प्रति सप्ताह तक वेतन मिलता, इसमें भी सुई – धागा उन्हें अपने पास से लगाना पड़ता और गैस, चाय तथा तौलिया प्रयोग करने का पैसा अलग से देना पड़ता।

बच्चे मालिकों की बर्बरता से घबरा कर भाग जाते, स्त्रियाँ अभाव

और अत्याचारों से तंग आकर आत्महत्या कर लेतीं । शुद्ध हवा नहीं, पानी नहीं, पर्याप्त भोजन नहीं, बस काम, काम, काम ।

माचिस की एक फैक्ट्री थी ब्रायंट एण्ड, में । उसके पांच पाउण्ड के शेयर का बाजार भाव था अट्ठारह पाउण्ड सात शिलिंग छह पेंस । उस फैक्ट्री में अधिकतर लड़कियाँ ही काम करती थीं। श्रीमती ऐनी बेसेंट और श्री हरबर्टबरोज़ स्वयं जाकर उनसे मिले और स्थिति की जानकारी प्राप्त की । पीले चेहरे वाली दो लड़कियों ने कहा, ''अब तो हद हो गई। किसी को हमारी मदद करनी चाहिए।''

श्रीमती बेसेंट द्रवित होकर बोली, ''लेकिन करेगा कौन, भले काम के लिए शुभकामनायें तो बहुत से लोग दे देते है लेकिन उसके लिये कष्ट उठाना कितनों को स्वीकार है?'' किसी को कुछ करना चाहिये लेकिन मैं क्यों करूं ? दुर्बल यही प्रश्न करते, लेकिन मानवता के जो सच्चे सेवक हैं वे हमेशा अपने से यही प्रश्न करते हैं कि, किसी को कुछ करना चाहिए अतः मैं ही क्यों न करूँ ?

और वही उन्होंने किया भी । उनकी दुर्दशा का वर्णन, ''व्हाइट स्लेवरी इन लंदन'' नामक पुस्तिका में करते हुए उन्होंने जनता से अनुरोध किया कि वह इस फैक्ट्री की बनी दियासलाई का बहिष्कार करें।

फैक्ट्री के मालिकों ने वहाँ काम करने वाली लड़कियों को डराया–धमकाया और कहा कि वे सब यह लिखकर दे दें कि जो–कुछ श्रीमती ऐनी बेसेंट ने प्रकाशित किया है वह झूठ है । हमें यहाँ हर प्रकार की सुविधायें मिलती हैं और हमें कंपनी से कोई शिकायत नहीं है । मज़दूर लड़कियों ने ऐसा करने से इंकार कर दिया । मालिकों ने डराने के लिए एक लड़की को नौकरी से निकाल दिया, इस पर सबने काम बंद कर दिया । इस सिलसिले में जो मज़दूर लड़कियाँ श्रीमती बेसेंट से मिलने आईं थीं, वे बोलीं, ''काम रहे या न रहे, आपने हमारे पक्ष में आवाज़ उठाई है, हम भला आपके विरूद्ध कुछ भी कैसे लिख कर दे सकते हैं ?''

पंद्रह दिन तक श्रीमती बेसेंट ने उनके लिए बहुत दौड़ धूप की ।

सहयोगी मिल कर अनेक वर्षों तक एक साइंस स्कूल चलाते रहे। अपनी सारी शिक्षा और अनुभव के बावजूद जब श्रीमती बेसेंट, एलिस और हिपैटिया ने यूनिवर्सिटी कालेज में वनस्पति विज्ञान पढ़ने की अनुमति माँगी तब वह उन्हें नहीं दी गई, श्रीमती बेसेंट को उनके तथाकथित पापों के कारण और एलिस तथा हिपैटिया को श्री ब्रैडला की पुत्रियाँ होने के कारण !

अधिकारों के प्रति चेतना की लहर जब एक बार फैलती है तो दूर तक फैलती चली जाती है । इंग्लैंड में मजदूर आंदोलन जोर पकड़ने लगे। श्रीमती ऐनी बेसेंट क्योंकि अपने लिए यश बटोरने में नहीं, ठोस काम करने में विश्वास रखती थीं, अतः वह जाने माने समाज सुधारकों के प्रयासों में भी योगदान देने लगी। इस बीच उन्होंने जिन समाजवादी चिंतकों तथा समाज सेवियों के साथ मिल कर काम किया, उनमें से प्रमुख थे श्री बनार्ड शॉ, डा. ऐवलिंग, श्री मोनक्योर डी. कानवे, प्रोफेसर लुडविग बुशनर, श्री एव्ज़ गूएयो और प्रोफेसर हैकेल । प्रारंभ सर जॉन लबक के उस बिल के विरोध में हुआ जिसमें युवक कर्मचारियों के लिए बारह घंटे प्रतिदिन काम करना निश्चित किया गया था। बच्चों के लिए उनके मन में बहुत मोह था । उन्होंने स्कूल बोर्ड के बच्चों के लिए निःशुल्क भोजन की मांग की । उन दिनों स्कूल बोर्ड में सार्वजनिक कार्यों के ठेकों में सस्ती से सस्ती चीज बाजार से खरीदी जाती और महंगी से महंगी बेची जाती । सरकारी विभाग मजदूरों से बहुत देर तक काम करवाते थे । और उन्हें बहुत कम वेतन देते थे । बीच में घूस और दलाली भी चलती थी । श्रीमती बेसेंट के प्रयत्नों से यह तय हो गया कि मजदूरों की यूनियन हो या न हो, सरकार और 'म्यूनिसिपैल्टी' वेतन की एक मानक दर देगी और काम के घंटों के एक मानक समय पर अमल किया जायेगा । जगह जगह काम करने वालों का शोषण हो रहा था । कमीज़ें बनाने वाली औरतों को साढ़े दस घंटे रोज़ काम करने के बाद एक दर्जन कमीजों का दस पेंस से लेकर तीन शिलिंग प्रति सप्ताह तक वेतन मिलता, इसमें भी सुई – धागा उन्हें अपने पास से लगाना पड़ता और गैस, चाय तथा तौलिया प्रयोग करने का पैसा अलग से देना पड़ता।

बच्चे मालिकों की बर्बरता से घबरा कर भाग जाते, स्त्रियाँ अभाव

और अत्याचारों से तंग आकर आत्महत्या कर लेतीं । शुद्ध हवा नहीं, पानी नहीं, पर्याप्त भोजन नहीं, बस काम, काम, काम ।

माचिस की एक फैक्ट्री थी ब्रायंट एण्ड, में । उसके पांच पाउण्ड के शेयर का बाजार भाव था अट्ठारह पाउण्ड सात शिलिंग छह पेंस । उस फैक्ट्री में अधिकतर लड़कियाँ ही काम करती थीं। श्रीमती ऐनी बेसेंट और श्री हरबर्टबरोज़ स्वयं जाकर उनसे मिले और स्थिति की जानकारी प्राप्त की । पीले चेहरे वाली दो लड़कियों ने कहा, ''अब तो हद हो गई। किसी को हमारी मदद करनी चाहिए।''

श्रीमती बेसेंट द्रवित होकर बोली, ''लेकिन करेगा कौन, भले काम के लिए शुभकामनायें तो बहुत से लोग दे देते है लेकिन उसके लिये कष्ट उठाना कितनों को स्वीकार है?'' किसी को कुछ करना चाहिये लेकिन मैं क्यों करूं ? दुर्बल यही प्रश्न करते, लेकिन मानवता के जो सच्चे सेवक हैं वे हमेशा अपने से यही प्रश्न करते है कि, किसी को कुछ करना चाहिए अतः मैं ही क्यों न करूँ ?

और वही उन्होंने किया भी । उनकी दुर्दशा का वर्णन, ''व्हाइट स्लेवरी इन लंदन'' नामक पुस्तिका में करते हुए उन्होंने जनता से अनुरोध किया कि वह इस फैक्ट्री की बनी दियासलाई का बहिष्कार करें।

फैक्ट्री के मालिकों ने वहाँ काम करने वाली लड़कियों को डराया–धमकाया और कहा कि वे सब यह लिखकर दे दें कि जो–कुछ श्रीमती ऐनी बेसेंट ने प्रकाशित किया है वह झूठ है । हमें यहाँ हर प्रकार की सुविधायें मिलती हैं और हमें कंपनी से कोई शिकायत नहीं है । मज़दूर लड़कियों ने ऐसा करने से इंकार कर दिया । मालिकों ने डराने के लिए एक लड़की को नौकरी से निकाल दिया, इस पर सबने काम बंद कर दिया । इस सिलसिले में जो मज़दूर लड़कियाँ श्रीमती बेसेंट से मिलने आईं थीं, वे बोलीं, ''काम रहे या न रहे, आपने हमारे पक्ष में आवाज़ उठाई है, हम भला आपके विरूद्ध कुछ भी कैसे लिख कर दे सकते हैं ?''

पंद्रह दिन तक श्रीमती बेसेंट ने उनके लिए बहुत दौड़ धूप की ।

उनके अधिकारों के पक्ष में लेख लिखे, संसद में प्रश्न उठवाये, सभायें कीं और हड़ताल के दौरान मजदूर लड़कियों के लिए जनता से चंदे की मांग की। अंत में लंदन ट्रेडर्स कांउसिल के माध्यम से समझौता हुआ । सबके वेतन में वृद्धि की गई और बात बात पर जुर्माने और वेतन में कटौती पर रोक लगा दी गई। उन निर्धन मज़दूर लड़कियों की कृतज्ञता का कोई ठिकाना न रहा ।

सत्य की खोज व्यक्ति को नयी–नयी दशाओं में ले जाती है और वह पाता है कि जो साथी छाया की तरह हर कष्ट में, हर संघर्ष में साथ देते रहे, उनसे भी विदा लेने का समय आ गया क्योंकि दोनों के रास्ते अलग हो गये ।

धीरे–धीरे सोशलिस्ट पार्टी की ओर श्रीमती ऐन बेसेंट का झुकाव बढ़ता गया । सन 1885 में वह फ़ेबियन सोसायटी में शामिल हो गई। नेशनल रिफ़ार्मर पत्र के लिए एक विचित्र स्थिति हो गई क्योंकि वह पत्र की संपादिका भी थीं और स्वामित्व में भी उनका साझा था । अब समाजवाद के प्रश्न पर पत्र की सम्पादकीय नीति दोहरी हो गई। स्थिति को देखते हुए उन्होंने अपने पद से इस्तीफ़ा दे दिया । चार्ल्स ब्रैडला को इसका हार्दिक दुख हुआ । दुख उनको भी हुआ । किंतु और चारा ही क्या था ! मान्यताओं का अंतर तो था ही साथ ही एक अर्से से श्रीमती बेसेंट यह भी अनुभव कर रही थीं कि – ''मैंने जनमत को बड़ी तेजी से मुड़ते देखा और देखा कि जो उदारपंथी अभी तक श्री ब्रैडला से दूर रहते थे, वे अब धीरे धीरे उनके निकट आने लगे और मैं जानती हूँ कि वे लोग मुझे केवल बोझ और राह का रोड़ा समझते थे । उनका विचार था कि अगर मैं ब्रैडला से अधिक घनिष्ट बन कर न रहूँक़ तो उनकी यात्रा अधिक सरल हो जाएगी, इसलिए मैं अधिक से अधिक पीछे हटती गई। फिर भी दोनों की एक दूसरे के प्रति सद्भावना में कमी कभी नहीं आई।''

कुछ ही दिनों बाद श्रीमती बेसेंट ने बेरोजगारों का एक जुलूस ट्रैफलगर स्कवायर तक ले जाना तय किया । बीच में पुलिस ने जब रोका तब

औपचारिक विरोध के बाद जुलूस भंग कर दिया गया । कुछ दूरी से जब जुलूस फिर से चला तो पुलिस ने डण्डे बरसाने शुरू कर दिये । श्रीमती बेसेंट, कर्निघम, ग्रैहम और जानबर्न्स पर भी हमला हुआ। शांतिपूर्ण जुलूस के कई लोगों की हड्डियाँ टूटीं, कई को चोटें आईं ।

उस समय नीति संबंधी मतभेद की ओर संकेत करते हुए भी श्री ब्रैडला ने श्रीमती ऐनी बेसेंट के साहस की प्रशंसा करते हुए लिखा कि – "पुलिस के कब्जे में पड़े असहाय, अभागे लोगों को कानूनी सहायता देने और जमानतें कराने के साथ–साथ इस दिशा में उन्हें जो जो करना और सहना पड़ा है, मैं उससे पूर्णरूप से सहमत ही नहीं, उनका कृतज्ञ भी हूँ । उन्होंने जो कुछ भी किया है, बहुत बहादुरी से किया है ।''

श्रीमती ऐनी बेसेंट निर्धन और असहाय जनता की ऐसी अभिन्न मित्र और हितैषी थीं कि एक बार जब वे लंदन की सड़कों पर होती हुई एलबर्ट हाल में एक विशाल सभा करने के लिये जा रही थीं तो हज़ारों की संख्या में लोगों के कण्ठ से एक साथ निकलने लगा – ''हमारी सच्ची मित्र ऐनी'' जैसे वे किसी मंत्र का जाप कर रहे हों। वे जानते थे कि उन्हीं के लिए वे अभावों में जी रही है, कष्ट उठा रही हैं और अथक परिश्रम कर रही है।

सन 1888 आते–आते श्रीमती ऐनी बेसेंट और पाल माल गज़ेट के सम्पादक श्री डब्लू. टी. स्टेड में काफी मित्रता हो गई। एक नास्तिक, दूसरे ईसाई; किंतु दोनों मानव कल्याण के दीवाने। श्री स्टेड तथा श्री एस. डी. हेडलाम आदि के प्रभाव के कारण एक नई संस्था ''ब्रदरहुड'' स्थापित करने के पक्ष में श्रीमती बेसेंट ने कई लेख लिखे । ये लोग ईश्वर की सेवा से मानव की सेवा को अधिक महत्त्वपूर्ण मानते थे ।

ऐनी बेसेंट क्या करना चाहती थीं, यह वह अच्छी तरह जानती थीं, लेकिन कैसे करना चाहती, इसके लिये अब भी आगे का मार्ग खोज रही थीं, वह चाहती थीं – जो भी निराशा से स्तब्ध लोग हैं, मैं उनके हकलाने का अर्थ बताऊंगी । दबी दबी कराहें, अस्पष्ट शिकायतें और

पशुओं सी वह सहमी – ''सहमी आवाजें जो अज्ञान और यातना सहता व्यक्ति निकालने को विवश हो जाता है, मैं उन सबके अर्थ समझाऊंगी।''

थियोसाफी का आश्रय

थियोसॉफ़ी का आश्रय

"मैं प्रत्येक व्यक्ति के लिए – उसका चाहे जो धर्म हो – यह चाहती हूँ कि उसके अंतः करण की स्वतंत्रता को पवित्र माना जाये, मैं चाहती हूँ कि प्रत्येक व्यक्ति को – उसके चाहे जो विश्वास हों – नागरिक जीवन में अपने धार्मिक विश्वास के कारण या धार्मिक विश्वास के कारण किसी प्रकार की यातना न झेलनी पड़े, मैं प्रत्येक व्यक्ति के लिए – उसके चाहे जो विचार हों – अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की माँग करती हूँ और यह भी चाहती हूँ कि ये निर्भीक विचार उसके नागरिक अधिकारों में बाधक न बनें, उसकी सामाजिक प्रतिष्ठा पर आँच न आने दें और उसकी गृहशांति न भंग करें ।"

– ऐनी बेसेंट

"सन 1889 मेरे लिए एक ऐसा वर्ष है जिसे मैं कभी न भूल सकूंगी क्योंकि इस वर्ष मुझे घर पहुंचने का मार्ग मिला था, मुझे एच. पी. ब्लावट्स्की के दर्शन करने और उनकी शिष्या बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था । मेरे मन में यह भावना प्रबल होती जा रही थी कि सामाजिक कुरीतियों को दूर करने के लिये मेरे पास जो साधन हैं, उनके अतिरिक्त और उनसे हट कर कुछ और चाहिए। समाजवादी ढाँचा आर्थिक पहलू संभालने के लिये तो पर्याप्त था लेकिन वह प्रेरणा, वह प्रवर्तक शक्ति, जो जन जन के बीच भाई–चारे की भावना स्थापित कर सके, मिले कहाँ से? निःस्वार्थ सेवा करने वाले कार्यकर्ताओं का सुनियोजित दल बनाने का हमारा प्रयास असफल रहा । काम काफी हुआ था लेकिन आत्म बलिदानी भक्ति के साथ सेवा कार्य करने का कोई सच्चा आंदोलन शुरू नहीं हो पाया था जिसमें आदमी केवल समर्पित भाव से काम करता, जिसमें वह केवल देने की बात सोचता, पाने की नहीं। यह उदात्त सामाजिक व्यवस्था बनाने के लिये सामग्री कहाँ है ? मानवता का मंदिर बनाने के लिये

तराशी हुई चट्टानें कहाँ है ?''

जीवन की तमाम दौड़—धूप और संघर्षों के दौरान ये प्रश्न उनके मन में बराबर उठ रहे थे । उन्होंने समाधान के लिये अनेक ग्रंथ पढ़े, आध्यात्मवाद का भी अध्ययन किया लेकिन उससे उन्हें संतोष नहीं हुआ। उन्हीं दिनों पाल माल गज़ट के संपादक श्री डब्लयू. टी. स्टेड ने इन्हें दो मोटे मोटे ग्रंथ देते हुए पूछा,"क्या आप इनकी समालोचना कर सकेंगी ? मेरे यहाँ के युवक इनसे कतराते है लेकिन आप तो ऐसे विषयों के लिये दीवानी रहती है, कुछ न कुछ उपयोग कर ही लेंगी।''

वे पुस्तकें एच. पी. ब्लावट्स्की की लिखी हुई ''द सीक्रेट डाक्ट्रिन'' के दो भाग थे । ऐनी बेसेंट पुस्तक में बिल्कुल खो गई। उन्होंने अनुभव किया— मैं ज्यों ज्यों उसे पढती गई, त्यों—त्यों उसमें मेरी दिलचस्पी गहरी होती गई। पुस्तक वह कितनी जानी पहचानी सी लगती थी, आगे के निष्कर्ष पहले से ही जान लेने के लिये मेरा मन कैसा उछल रहा था! वह कितनी स्वाभाविक थी, उसमें कैसी संगति थी, वह कैसी सम्बद्ध, सूक्ष्म और बुद्धिगम्य थी ! मुझे लगा जैसे मेरी तमाम पहेलियों और समस्याओं का अंत हो गया हो ।उस प्रकाश की जगमगाहट में मैंने जान लिया कि अभी तक की थका देने वाली लंबी खोज का अंत हो गया है और मैंने सत्य को पा लिया है।''

समालोचना लिखने के बाद श्रीमती बेसेंट ने भी स्टेड से कहा कि वह लेखिका से परिचय करना चाहती है । निश्चित दिन वह मैडम ब्लावट्स्की से मिलने गई। एक बड़ी सी कुर्सी पर बैठी उस सौम्य प्रकृति ने प्रभावशाली स्वर में कहा, ''मेरी प्रिय श्रीमती बेसेंट ! मैं कितने दिनों से तुमसे मिलने के लिये उत्सुक थी।''

उन्होंने श्रीमती बेसेंट के हाथ अपने मजबूत हाथों में थाम लिए। जीवन में मैडम ब्लावट्स्की के प्रथम दर्शन करती ऐनी बेसेंट उनकी आँखों की गहराई में डूब उतरा रही थीं।

''विदा लेते समय उनकी पैनी दृष्टि एक बार फिर श्रीमती बेसेंट की

दृष्टि से मिली । उन्होंने बहुत ललक कर कहा, "ओह श्रीमती बेसेंट ! काश तुम हम लोगों के साथ आ जातीं ।"

थियोसाफ़िकल सोसाइटी में शामिल होने से पहले श्रीमती बेसेंट के सामने यह एक बहुत बड़ा प्रश्न चिह्न था कि वह क्या करें ? क्या वह यह स्वीकार कर लें कि उनकी अब तक की सारी मान्यताओं गलत थीं ? क्या वे उन सब मित्रों को छोड़ दें जिन्होंने हर संघर्ष में उनका साथ दिया है ? और उनके सुख दुख के साथी चार्ल्स ब्रैडला ? उनके समाजवादी खेमे में चले जाने से वह पहले ही खिन्न थे, अब यह एक और आघात ! लेकिन श्रीमती बेसेंट के लिए यह कोई नई स्थिति नहीं थी। वह हर बार पहली सीढ़ी से चढ़ना शुरू करने की आदी थीं। उन्हीं ने तो कहा था कि– मेरे चाहे जो मित्र मुझसे छूट जायें, चाहे जो मानवीय संबंध टूट जायें, मैं सत्य के प्रति अपनी निष्ठा पर दाग नहीं लगने दूंगी ।

वह थियोसाफ़िकल सोसाइटी की सहकर्मी बनने के बाद मैडम ब्लावट्स्की के पास गईं । उन्होंने पूछा, "तुम सोसाइटी में शामिल हो गईं ?"

"जी हाँ ।"

"मैंने तुम्हें व्यक्तियों और संस्थाओं द्वारा की गई अपनी निंदा की जो रिपोर्ट और कतरने दीं थीं, वे ध्यान से पढ़ लीं ?"

"पढ़ लीं ।"

"अब भी तुम हमारे साथ आने को उत्सुक हो ?" श्रीमती ऐनी बेसेंट उनक आगे घुटने टेककर बैठ गई और उनके हाथों को अपने हाथों में थामकर बोली, "मेरा उत्तर यही है कि क्या आप मुझे अपनी शिष्या के रूप में स्वीकार करेंगी ? क्या सारे संसार के सामने आपको अपना गुरू घोषित करने का गौरव आप मुझे प्रदान करेंगी ?"

मैडम ब्लावट्स्की ने अपना हाथ अपनी शिष्या के सिर पर रख दिया

और बोलीं, ''तुम एक पवित्र स्त्री हो । ईश्वर तुम्हारा भला करें ।''

थियोसाफी का अर्थ समझाते हुए चार्ल्स ब्रैडला ने लिखा है – थियोसाफ शब्द बहुत पुराना है और इसका नया अर्थ है वह व्यक्ति जो भगवान के बारे में या प्रकृति के नियमों के बारे में आंतरिक आलोक द्वारा जानने का दावा रखता है ।

श्रीमती ऐनी बेसेंट ने थियोसाफिकल सोसाइटी के मुख्य उद्देश्य इस प्रकार बताये है – जाति या धर्म का भेदभाव किए बिना विश्वबंधुत्व की स्थापना करना, आर्ष साहित्य तथा दर्शन का गहन अध्ययन करना, प्रकृति के ऐसे नियमों के विषय में जानकारी प्राप्त करना जिनकी अभी तक व्याख्या नहीं हो पाई है तथा मुनष्य में छिपी भौतिक शक्तियों की खोज करना । धार्मिक विचारों के बारे में सदस्यों को पूरी छूट है। सोसाइटी के प्रवर्तक ईश्वर को अवतारी व्यक्ति के रूप में नहीं मानते वरन् सर्वेश्वरवाद के बहुत ही सूक्ष्म रूप में विश्वास करते हैं यद्यपि सदस्यों के लिए इसको भी मानना अनिवार्य नहीं है।

श्रीमती ऐनी बेसेंट के थियोसाफिस्ट हो जाने पर उनकी मान्यताओं को लेकर तरह तरह की टीका टिप्पणी और आलोचना होने लगी । यद्यपि ऐसे भी लोग थे जिनके लिए उनकी मान्यतायें कब, क्या है, इसका महत्त्व नहीं था, महत्त्व था केवल उनका।

इस बीच भी वे यथावत पहले जैसी गति से ही सामाजिक कार्य करती जा रही थीं। उन्होंने फर बनाने वालों का संगठन बनाया,ट्राम और बस चलाने वालों के काम के घंटे कम करवाने के लिये आंदोलन किया, गरीब बच्चों की स्थिति सुधारने की दिशा में ध्यान दिया । रेल, ट्राम या बस में लगने वाले समय को वह यों ही नष्ट नहीं होने देती थीं। उसका भरपूर सदुपयोग वह अपनी शिक्षा को आगे बढ़ाने में करती थीं।

सारे मतभेद के बावजूद श्री चार्ल्स ब्रैडला और श्रीमती बेसेंट की मित्रता में कोई दरार नहीं आई थी। सन 1889 में श्री ब्रैडला गंभीर रूप

से बीमार हो गये । उनकी बेटी की सेवा टहल ने उन्हें उस समय मृत्यु के हाथों से वापस छीन लिया । डाक्टर ने उन्हें समुद्र यात्रा करने का परामर्श दिया । भारत जाने के लिये वह वैसे भी उत्सुक थे अतः राष्ट्रीय कांग्रेस के अधिवेशन में भाग लेने के लिये रवाना हो गये । यहाँ वे भारत समर्थक के रूप में पहले ही बहुत प्रसिद्ध थे ।भारतीय जनता ने उनका स्नेह और आदरपूवर्क "ब्रिटिश संसद में भारत के सदस्य" में रूप में स्वागत किया । सन 1891 में इस वीर योद्धा की मृत्यु हो गई। इसी वर्ष श्रीमती बेसेंट को एक और आघात लगा जब मैडम ब्लावट्स्की का भी निधन हो गया ।

इसके एक वर्ष बाद श्रीमती बेसेंट ने भारतीय थियोसाफिस्टों को वचन दिया कि वह भारत अवश्य आयेंगी । सन १८९३ में उन्होंने यह वादा पूरा किया और अपनी जन्मभूमि से एक नयी मातृभूमि की ओर चल दीं।

श्रीमती बेसेंट जब थियोसाफिकल सोसाइटी की सदस्या होकर भारत आईं तो कुछ वर्षों तक वे राजनीतिक गतिविधियों से दूर रहीं । उन्होंने किसी भी संस्था के साथ अपना संबंध नहीं रखा । ऐसा उन्होंने अपनी गुरू मैडम ब्लावट्स्की के पूर्वादेश पर किया था । श्रीमती बेसेंट का कथन है :

> "उन्होंने सोचा, और सही सोचा कि नयी परिस्थिति में जब कि मैं अलौकिक ज्ञान प्राप्ति के लिए उनकी शिष्या बनी हूँ, मुझे थियोसाफिकल दृष्टिकोण के फोकस को नये प्रकाश के संदर्भ में व्यवस्थित करना पड़ेगा। उन्होंने उन सारे विषयों पर जिन पर मैं बोलती रही हूँ तथा जिन पर सार्वजनिक जीवन में मेरी भरपूर निष्ठा रही है, बोलने पर प्रतिबंध लगा दिया । उन्होंने ठीक किया क्योंकि मेरे पुराने अनगढ़ विचार मौन की अग्नि में तपाने को डाल दिए गये । उनमें जो खरा सोना था वह शेष रह गया ।"

उस समय थियोसाफ़िकल सोसाइटी में डब्यू. क्यू. जज., ए. पी.

सिनेट, सी. डब्लू लेडबीटर, ब्रदर बर्ट्रम नाइटले, ए. ओ ह्यूम, कर्नल एच. एस. ओल्काट जैसे महत्वपूर्ण और प्रतिभाशाली सदस्य काम कर रहे थे ।

मैडम ब्लावट्स्की के साथ साथ थियोसाफिकल सोसाइटी के संस्थापक कर्नल ओल्काट ने अपनी डायरी में एक स्थान पर लिखा है – ''मैं देखता हूँ कि श्रीमती बेसेंट प्रकृति से ही थियोसाफिस्ट है । रहस्यात्मकता के प्रति स्वाभाविक आकर्षण होने के कारण उनका हम लोगों से अनिवार्य रूप से लगाव है । सिनेट के बाद से हमें अब तक जितने लोग मिले हैं उनमें वह सब महत्त्वपूर्ण है ।''

सन 1907 में श्रीमती ऐनी बेसेंट थियोसाफ़िकल सोसाइटी की अध्यक्षा चुनी गईं । उनकी अध्यक्षता में सोसाइटी की खूब उन्नति, प्रचार व प्रसार हुआ । उन्होंने अडयार को अपना घर बना लिया था जहाँ से वे अन्य केंद्रों का निरंतर निरीक्षण करती रहती थी। दक्षिण भारत की परंपरा में सब उन्हें अम्मा पुकारते और वही उन सबके लिए वह निरंतर बनी भी रहीं । उनके जीवन सागर में आया तूफान थम गया था । उन्हीं के शब्दों में – ''इस प्रकार मैं तूफान से शांति की ओर बढ़ी । बाहरी जीवन का शांत सागर नहीं, जिसकी चाह किसी दृढ़ आत्मा को नहीं होती, भीतर की शांति जिसे बाहर के कष्ट प्रभावित नहीं करते, वह शांति जो अस्थाई नहीं, शाश्वत है, जो जीवन की सतह पर नहीं, गहराई में है ।''

नई मातृभूमि भारत

नई मातृभूमि भारत

"नव जीवन के लिए तुम अपने को तैयार करो, भारत में एक नया युग लाने के लिये अपने को तैयार करो, और अपनी आशायें तथा आकांक्षायें सदैव ऊंची रखो क्योंकि कहा जाता है कि यदि हम तारे को लक्ष्य बनायें तो तीर बहुत, दूर तक जाता है।"

– ऐनी बेसेंट

ऐसे कितने लोग होंगे जो अपना देश, परिवेश, मित्र, स्वजन, सुख सुविधायें सब त्यागकर बहुत दूर एक निर्धन, परतंत्र देश को स्वेच्छा से अपना लें, और अपनायें भी ऐसा कि अंतिम सांस तक उसकी आजादी के लिये जूझते रहें और उसकी उन्नति के लिये दिन रात एक करते रहें ?

श्रीमती ऐनी बेसेंट ने कभी किसी संघर्ष में हार नहीं स्वीकार की, घुटने नहीं टेके । भारत आने के बाद सबसे पहले उन्होंने यहां के जन जीवन को जानना समझना चाहा । इसके लिये सन् 1893–1894 में वह कर्नल ऑल्काट के साथ जगह जगह थियोसाफिकल सोसाइटी की शाखा का दौरा करती रहीं, देश का भूगोल, इतिहास और वर्तमान समझती रहीं। उन्होंने भारतीय वेशभूषा और रहन सहन अपना ली थी। एक योगी जैसा समर्पित जीवन था उनका । एकदम स्वच्छ, सरल, सादा और नियमित । सन 1895 में वह बनारस में रहने लगीं।

दिसंबर सन् 1898 में उन्होंने सैंट्रल हिंदू कालेज की स्थापना की जहाँ वे नितांत भारतीय ढंग से शिक्षा देना चाहती थीं। मिशनरी स्कूलों में अंग्रेजियत का बोलबाला था । भारतीय मान्यताओं, परंपराओं, भाषाओं और धर्म की वे हंसी उड़ाते थे, फलतः उन विद्यार्थियों में किसी प्रकार की आस्था नहीं पनप पाती थी, न स्वदेश के नाम पर उन्हें गर्व का अनुभव होता था। श्रीमती ऐनी बेसेंट इस दास मनोवृत्ति को, जो गोरों का प्रभुत्व स्वीकारने, विदेशी शासन होने और हर बात में पश्चिम की नकल करने की आदत के कारण समाज में बढ़ती जा रही थी, जड़ से मिटा देना चाहती थी।

विद्यार्थी वर्ग से उन्हें विशेष लगाव था . उनको संबोधित करते हुए श्रीमती बेसेंट ने कहा है–

"मेरे बच्चो ! उन्नति का लक्ष्य रखो । भारत का भविष्य उसकी प्राचीन महानता के अनुरूप गढ़ो । तुम अपने पिता से भी अधिक ज्ञानवान हो, तुम अपने बुजुर्गो से अधिक आस्थावान हो । भारत की महानता के दिन समाप्त नहीं हो गये । उसका भविष्य अपने सशक्त अतीत से अधिक शक्तिशाली और गौरवपूर्ण होगा । . . . देश की एकता के विचारों में पूरी आस्था रखो । छोटे छोटे वर्गों में बंटने की आदत छोड़ दो । प्रदेशों में बंटने के आधार पर शत्रु भाव रखने की आदत भी छोड़ दो। मै मद्रासी हूँ, मै पंजाबी हूँ, मै बंगाली हूँ, मै उत्तर भारत का हूँ, इन संकुचित भावनाओं का त्याग करके देश की संतान को सिर ऊंचा करके यह कहना सिखाओ कि मै भारतीय हूँ । बच्चों के इन्हीं शब्दों से कल का भारत जन्म लेगा । . . . भारत माता के बालक बालिकाओं से मै एक ही मांग करती हूँ कि उनमें से कुछ देश के गौरवशाली अतीत के योग्य बनें, कुछ उस महान माँ की संतान होने योग्य बनें, कुछ उसकी मांगों की पूर्ति करने के योग्य बनें और पार्टियों के आपसी झगड़ों और राजनीतिज्ञों के बीच दरार डालने वाले प्रश्नों के स्थान पर विचार, दर्शन, साहित्य, विज्ञान जैसी महत्त्वपूर्ण भेंट उसे दें। मै युवा शक्ति से अनुरोध करती हूँ कि जिन्होंने जीवन में अपना मार्ग कभी नहीं चुना, जिनके हृदय कोमल और आशायें पवित्र है, वे माँ की सहायता के लिये आगे बढ़े । क्या तुम भविष्य को वह सब नहीं सौंपना चाहोगे जो तुमने अतीत से पाया है ? क्या आने वाली पीढ़ियों के लिये तुम उस कोष में कुछ जोड़ना नहीं चाहोगे जो तुमने पिछली पीढ़ियों से विरासत में पाया है ?"

शिक्षा, विकास, जागरण, नागरिक अधिकार तथा स्वतंत्रता को एक

दूसरे से अलग करके नहीं देखा समझा जा सकता । शिक्षा का प्रसार होगा तो देश में जागरण होगा; जागरण की लहर आएगी तो नागरिक अधिकारों की मांग के लिए आवाज़ उठेगी; अधिकारों पर बल दिया जायेगा तो स्वतंत्रता का प्रश्न उठेगा ही । जगह जगह लोग अपनी क्षमता के अनुरूप काम कर रह थे । सन 1879 में थियोसाफिकल सोसाइटी अपना प्रधान कार्यालय इंग्लैंड से भारत ले आई थी। सोसाइटी के जो प्रमुख कार्यकर्त्ता हर वर्ष सम्मेलनों के लिए जुटते थे वे राष्ट्रीय चेतना को बल देने में भी योगदान देने लगे । इनमें श्री ए. ओ. ह्यूम जैसे अनेक समाज सेवी भी थे जो सरकार के सचिव पद से अवकाश प्राप्त करने के बाद थियोसाफिकल सोसाइटी में सम्मिलित हुए और जिन्होंने बाद में स्वयं को भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के लिए समर्पित कर दिया । दिसंबर सन 1884 में मद्रास में एक राष्ट्रीय सम्मेलन का विचार हुआ . सन् 1885 में बंगाल के प्रसिद्ध वकील श्री डब्लू. सी. बनर्जी की अध्यक्षता में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का सबसे पहला अधिवेशन हुआ । सन् 1906 में कलकत्ता कांग्रेस में दादा भाई नौरोजी की अध्यक्षता में कांग्रेस ने स्वराज्य, स्वदेशी, राष्ट्रीय शिक्षा और ब्रिटिश माल के बहिष्कार का कार्यक्रम स्वीकार किया ।

भारत आने के बाद से श्रीमती बेसेंट यहाँ के प्रमुख नेताओं से मिलती रहती थीं। उन दिनों स्वतंत्रता के लिये किए जा रहे जन आंदोलन का प्रमुख केंद्र थे गांधी जी । यद्यपि डा. बेसेंट और गांधी जी का पगडंडियों को लेकर आपस में मतभेद भी हो जाता था किंतु यात्रा एक ही थी गंतव्य एक ही था, अतः वे एक दूसरे का आदर भी बहुत करते थे । गांधी जी ने उनके बारे में लिखा है–

> "जब मै सन् 1988 और उसके बाद भी, लंदन में शिक्षा पा रहा था तभी अपने जैसे अनेक दूसरे व्यक्तियों की तरह मै भी ब्रैडला और बेसेंट का प्रशंसक हो गया था। एक दिन जब मैंने अखबारों में पढ़ा कि ऐनी बेसेंट थियोसाफिस्ट हो गई हैं तो मैं बहुत प्रसन्न हुआ। उन दिनों मैं बालक ही था और वहां मुझे जानने वाला कोई न था । अगर मुझे मैडम

ब्लावट्स्की और उनकी विशिष्ट शिष्या के वस्त्रों का एक छोर भी स्पर्श करने को मिल जाता तो मैं अपने को धन्य समझता । बाद में, जब डा. बेसेंट भारत आई तब मैं उनके निकट संपर्क में आया और राजनीतिक मतभेदों के बावजूद उनके प्रति मेरे मन में जो आदर तथा श्रद्धा पहले थी उसमें कभी कोई अंतर नहीं आया ।"

पं. जवाहरलाल नेहरू से उनकी पहली बार भेंट सन 1901 में हुई। उसका स्मरण करते हुए उन्होंने कहा है –

"मेरे जीवन की अनेक महत्वपूर्ण घटनाओं में से एक घटना उस दिन घटित हुई जिस दिन मैं ऐनी बेसेंट से मिला था । तब मैं केवल बारह साल का था उनके प्रभावशाली व्यक्तितव और साहसपूर्ण गतिविधियों के बारे में पहले ही चारों ओर चर्चा फैली थी उनकी वाक् शक्ति ने भी मुझ बेहद प्रभावित किया और जैसी कि एक बालक में किसी के प्रति प्रशंसा और आदर की भावना होना स्वाभाविक है, मैं उन्हें एकटक देखता रहता या उनके साथ साथ आगे पीछे, दायें बायें घूमता रहता । उसके बाद सालों बीत गये उनसे मेरी भेंट नहीं हो पाई यद्यपि उस असाधारण व्यक्तित्व के प्रति मेरे मन में प्रशंसा बराबर बनी रही । वर्षो बाद जब मेरा राजनीतिक क्षेत्र में उनसे निकट संपर्क हुआ तो मैं पूरी तरह से उनका प्रशंसक बन गया । यह मेरा सौभाग्य था कि में उनसे परिचित था और एक सीमा तक मेंने उनके साथ काम भी किया और ऐसा होना ही था क्योंकि वह उस युग की एक बहुत ही प्रभावशाली व्यक्ति थीं । भारत को अपनी आत्मा पाने के योग्य बनाने के लिये उन्होंने जो कुछ किया, उसके लिए इस देश पर तो विशेष रूप से उनके प्रति कृतज्ञता का ऋण रहेगा।"

ऐसा नहीं है कि श्रीमती बेसेंट ने यहां शुरू से प्रशंसा और समर्थन के

बीच ही काम किया हो, अक्सर वे बिल्कुल अकेली भी छूट जाती थी लेकिन तब बी वे अपने विश्वास के सहारे आगे ही बढ़ती जाती थीं। एक और वह सामाजिक कुरीतियों से मोर्चा लेतीं और लोगों को उन्हें दूर करने के लिये समझाती, बुझाती, प्रेरित करती, तो दूसरी ओर स्त्री शिक्षा, विधवा–विवाह, स्त्रियों के मताधिकार के लिये जनमत बनाती। उनका यह भी कहना था कि भारत की एकता में सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि वह अतीत में कभी एक संपूर्ण इकाई के रूप में नहीं जुड़ा रहा समय समय पर अस्थायी एकता अवश्य स्थापित होती रही थी लेकिन हिमालय से कन्याकुमारी तक और बंगाल से काठियावाड़ तक एक सुदृढ़ राष्ट्र के रूप में वह नहीं उभर सका, अतः भारतवासियों के सामने सबसे बड़ा काम यह है कि वे आत्मसजग और आत्मनिर्भर राष्ट्रीयता का निर्माण करें ।

श्रीमती ऐनी, बेसेंट द्वारा बनारस में स्थापित सेंट्रल हिंदू कालेज में देश के कोने कोने से विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त करने आते थे । शिक्षक भी विभिन्न प्रदेशों के थे और कुछ तो यूरोप के भी थे । सन् 1913 में उन्होंने यह कालेज श्री मदनमोहन मालवीय को समर्पित कर दिया जिससे वह वहां पर बनारस हिंदू विश्वविद्यालय की स्थापना कर सकें । सन 1829 में इस विश्वविद्यालय ने उन्हें डाक्टरेट प्रदान करके सम्मानित किया । वे चाहती थी कि विद्यार्थियों का बहुमुखी विकास हो । वे आस्थावान और जिम्मेदार नागरिक भी बनें, परम देशभक्त भी बने: बिना किसी हीनभावना के भरपूर शिक्षा प्राप्त करके मानसिक विकास भी करें और खेल कूद द्वारा शारीरिक विकास की ओर भी ध्यान दें । उनका आग्रह था कि कम से कम शुल्क लेकर विद्यार्थियों को अधिक से अधिक सुविधायें दी जायें । उनके आस पास सेवा कार्य के प्रति समर्पित लोगों का जमघट होने लगा । श्री जी. एस. अरुण्डेल, डा. भगवानदास, श्री सी. एल. त्रिलोककर आदि शिक्षाविद् तो उनके सहयोगी थे ही, उन्होंने एक केंद्रीय विश्वविद्यालय की योजना बनाई और उसके लिए देशव्यापी स्तर पर विद्वानों का समर्थन प्राप्त किया । महान देशभक्त, शिक्षाशास्त्री तथा अद्वितीय वक्ता पं. मदनमोहन मालवीय से लेकर मद्रास के श्री एस. सुब्रमण्य अययर, बंबई के श्री नारायण चंद्रावरकर,

लाहौर के श्री पी. सी. चैटरजी, कलकत्ता के श्री हीरेंद्रनाथ दत्त और श्री आशुतोष मुकर्जी, बांकीपुर (पटना) के श्री एस. सिन्हा, सैयद हसन इमाम और श्री मज़हरुलहक, हैदराबाद के श्री अकबर हैदरी, बनारस के श्री गोविंददास, रंगून के श्री कावसजी, पूना के श्री एन. डी. खण्डेलकर, कपूरथला के श्री प्रताप सिंह, श्रीलंका के श्री डी. बी. जयतिलक, दिल्ली के लाला सुल्तान सिंह, लखनऊ के श्री गंगाप्रसाद वर्मा और ग्वालियर के श्री श्यामसुंदर लाल जैसे जाने माने लोगों का एक न्यासी मण्डल (बोर्ड आफ ट्रस्टीज) बना कर उन्होंने केंद्रीय विश्वविद्यालय की योजना के लिए वायसराय का समर्थन प्राप्त किया और सन १९१० में इसे याचिका के रूप में इंग्लैंड के राजा का विचारार्थ भेज दिया गया।

इस याचिका के कुछ प्रमुख सुझाव इस प्रकार थे –

1– उच्च शिक्षा की जिम्मेदारी गैर सरकारी तथा स्वैच्छिक प्रयासों पर आधारित होनी चाहिए। साथ ही इन प्रयासों को एक रूपता देने के लिए एक विश्वविद्यालय की स्थापना होनी चाहिए।

2– प्रस्तावित विश्वविद्यालय की विशेषता यह होगी कि वह उन्हीं महाविद्यालयों को अपने साथ सम्बद्ध करेगा जहां दी जाने वाली शिक्षा के साथ साथ धर्म और नैतिकता को भी उचित महत्त्व दिया जाता हो। वह सभी धर्मों को एक सा सम्मान देगा और उनके बीच भेदभाव नहीं करेगा। वह विश्वविद्यालय अच्छे नागारिक बनाने का एक महत्त्वपूर्ण केंद्र होगा, न कि प्रमाण पत्र ढालने की टकसाल।

3– वहां भारतीय इतिहास, दर्शन और साहित्य को सर्वप्रथम स्थान दिया जायेगा। पाश्चात्य दर्शन का अध्ययन अवश्य होगा किंतु पूर्वी दर्शन को अपेक्षाकृत अधिक महत्त्व दिया जायेगा।

4– समाप्तप्राय भारतीय उद्योग धंधों को पुनजीर्वित करने की आवश्यकता है। वहां विभिन्न शिल्पों, उद्योगों, कलाओं, दस्तकारी तथा कृषि के विकास का प्रयास वैज्ञानिक आधार अथवा सहयोग से किया जायेगा।

5– प्रारंभ में यह विश्वविद्यालय केवल परीक्षाओं का संचालन करेगा, बाद में यह एक शिक्षा संस्थान का रूप ले लेगा।

श्रीमती ऐनी बेसेंट ने यह बात शुरू से समझ ली थी कि भारत में पारिवारिक और सामाजिक जीवन की प्राण शक्ति स्त्रियाँ हैं। जब स्त्रियों को अपनी खोई हुई प्रतिष्ठा वापस मिल जायेगी तब राष्ट्र में चेतना की लहर स्वयं ही दौड़ जायेगी। देश के अनेक गणमान्य नेता भी इस दिशा में प्रयत्नशील थे । राजा राममोहन राय स्त्रियों के समानाधिकारों और समान अवसरों पर बल दे रह थे, प. ईश्वरचंद्र विद्यासागर के प्रयत्नों से विधवा विवाह कानून बना, केशव चंद्र सेन उनकी खोई प्रतिष्ठा की पुनर्स्थापना का प्रयास कर रहे थे ।

श्रीमती बेसेंट ने आधुनिक जीवन में प्राचीन आदर्श शीर्षक वार्तामाला में स्त्रीत्व के संदर्भ में बताया है कि स्त्रियों को राष्ट्रीय जीवन में अपना उचित स्थान दिलवाने के लिये किस प्रकार के परिवर्तन अपेक्षित हैं। उस स्थान को प्राप्त किए बिना भारत सही अर्थ में स्वतंत्र हो ही नहीं सकता। सन 1904 में उन्होंने बनारस में एक बालिका विद्यालय की स्थापना की। इन स्कूलों और उनमें छात्राओं की संख्या निरंतर और तेजी से बढ़ती चली गई। सन 1917 में जब वह इंडियन नेशनल कांग्रेस की अध्यक्षा चुनी गईं और तब उन्होंने कलकत्ता अधिवेशन में पहली बार भारतीय महिलाओं के मताधिकार की मांग की । स्त्रियों में जाग्रति इतनी तीव्र गति से फैली कि इसी वर्ष जब श्रीमती बेसेंट को नजरबंद किया गया तब देश भर के शहरों और कस्बों की महिलाओं ने उनकी रिहाई की मांग करते हुए जुलूस निकाले और उनके साथ न्याय किया जाये, इस भावना से धार्मिक स्थानों में प्रार्थनायें की गईं ।

भारतीय नारी के महत्त्वपूर्ण स्थान के बारे में श्रीमती बेसेंट का कथन है –

> ''यह निश्चित है कि भारत की महानता तब तक सार्थक नहीं होगी जब तक कि भारतीय स्त्रियों को जीवन में अधिक

और स्वतंत्र भागीदारी प्राप्त नहीं होती, क्योंकि देश के उद्धार का दायित्व उन्हीं पर अधिक है। पति को पत्नी ही प्रेरणा भी देती है और उस पर अंकुश भी लगाती है, मां ही बच्चे को बनाती भी है, बिगाड़ती भी है। स्त्री ही पुरुष को महान बनने के लिये प्रेरित करती है और जहां वह नहीं है, वहां ईश्वर किसी बलिदान को स्वीकार नही करता। स्त्रियों में पुरुष को ऊंचा उठाने या नीचा गिराने की असीम शक्ति है। अतः स्त्री–पुरुष को हाथ में हाथ थाम कर देश की मान–मर्यादा बढ़ाने के लिए आगे बढ़ना चाहिये वरना ऊंचाई तक पहुंचने की नौबत ही नहीं आ पाएगी।'

सन 1908 और 1913के बीच श्रीमती बेसेंट कई बार इंग्लैड गईं उन दिनों वहां की जनता को भी तथाकथित भारत में अशांति का एहसास था और इस बारे में लोग चिंतित थे। शासित और शासकों के बीच एक तरह का संग्राम चल रहा था और कुछ ऐसे समझौते पर सबकी आशा केंद्रित थी जो दोनों को स्वीकार हो सके। लार्ड मूरलो ने अपने सुधार आज़मा कर देख लिए थे, किंतु उनका अशांति पर कोई अनुकूल प्रभाव न पड़ा। लार्ड मिण्टो ने दमन की नीति अपनाई, वह भी असफल रही। अनेक समझदार लोग चाहते थे कि भारत को काफी हद तक स्वतंत्रता दी जाये जबकि वहां की लिबरल सरकार उसके पक्ष में न थी। श्रीमती बेसेंट ने भारत की स्वतंत्रता की प्रबल पक्षधर के रूप में वहां अनेक भाषण दिये। उनकी साहसिकता और निष्ठा ने पत्रकारिता के माध्यम से देश में हलचल पैदा कर दी। स्वराज्य प्राप्ति के लिये आंदोलन में निरंतरता लाने के उद्देश्य से उन्होंने सन 1914 में 'कामन विल' नामक अंग्रेजी साप्ताहिक चलाया जिसमें वे खुल कर अपने विचार प्रकट कर सकें। सन 1914 में उन्होंने मद्रास स्टैण्डर्ड नामक पत्र खरीद लिया और उसे न्यू इंडिया के नाम से चलाया। इन पत्रों के माध्यम से राष्ट्रीय विचारधारा देश भर में फैलने लगी। सन 1916 में होम रूल लीग की स्थापना हुई। इस संस्था ने स्वराज्य की भावना को जगाने में बहुत सहायता दी।

सन 1914 में वह भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की प्रतिनिधि चुन ली गईं।

सन् 1916 में कुड्डालोर को एक राजनीतिक सम्मेलन में श्रीमती बेसेंट ने भारतीय होमरूल के पक्ष में एक प्रभावशाली वक्तव्य में कुछ खरी खरी बातें कीं। फलस्वरूप मद्रास के तत्कालीन गवर्नर लार्ड पेंटलैंड ने उन्हें बुलवा कर भारत छोड़ कर चले जाने का आदेश दिया। उन्हें भला यह आदेश कैसे स्वीकार हो सकता था? इस पर सन् 1917 में श्रीमती बेसेंट तथा उनके साथी श्री जी. एस. आरुण्डेल और श्री बी. पी. वाडिया को नजरबंद कर दिया गया। देशभर में उनकी नजरबंदी के विरोध में सभायें होती रहीं विदेशों से भी उन्हें बहुत समर्थन मिला। जब सरकार ने देखा कि जनता का असंतोष गहरा और व्यापक होता जा रहा है तब उसने श्रीमती ऐनी बेसेंट को नजरबंदी से मुक्त कर दिया।

अगस्त सन १९१७ में वह भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की अध्यक्षा चुन ली गईं। कांग्रेस का यह अधिवेशन कलकत्ता में हुआ। इस अवसर पर श्रीमती ऐनी बेसेंट ने जो अध्यक्षीय भाषण दिया वह कथ्य, भावना और भाषा की दृष्टि से अद्वितीय था। उसका कुछ अंश इस प्रकार है –

> "जब मुझे अपमानित किया गया, आपने मुझे सम्मान का मुकुट पहनाया, जब मुझे बदनाम किया गया तब आपने मेरी निष्ठा और ईमानदारी पर विश्वास किया; जब नौकरशाही के पैरों तले मुझे कुचला जा रहा था, तब आपने मुझे अपना नेता घोषित किया; जब मुझे चुप रहने को विवश कर दिया गया और मै स्वयं अपनी पैरवी करने में असमर्थ थी, तब आपने मेरी पैरवी की और मुझे मुक्त कराया; मैं अकिंचन के रूप में आपकी सेवा करके गर्व का अनुभव करती थी परंतु आपने मुझे सम्मान देकर संसार के समाने अपने चुने हुए प्रतिनिधि के रूप में प्रस्तुत किया। मेरे पास शब्द नहीं है जिनसे मैं आपके प्रति आधार प्रकट कर सकूँ, वह वाक्शक्ति नहीं जिससे आपका ऋण चुका सकूँ। मेरे सेवा कार्य ही मेरी भावना व्यक्त करेंगे क्योंकि शब्दों में इतना सामर्थ्य नहीं है। आपने मुझे जो उपहार दिया है, उसे मैं मातृभूमि की सेवा में परिणित कर रही हूँ। मैं नये सिरे से अपने जीवन को अपने

कर्मों के द्वारा उसकी आ़राधना के लिय समर्पित करती हूँ। मेरे पास जो कुछ भी है और मै स्वयं जो भी हूँ, वह माँ की वेदी पर अर्पित करती हूँ और हम सब मिल कर शब्दों में नहीं, उनकी सेवा के द्वारा वंदे मातरम् का उद्घोष करेंगे।''

नवजागरण में योगदान

नवजागरण में योगदान

''भावना तो यह होनी चाहिए कि हम माँ की सेवा हेतु न्यौछावर होने के लिए सदा तैयार रहें, उसकी सेवा का कोई अवसर न चूकें, संसार में उसका यश बढ़ायें न कि यह भावना कि इतने त्याग के बदले इतना लाभ मिले ।''

– ऐनी बेसेंट

कर्नल ओल्काट की मृत्यु के उपरान्त थियोसाफिक सोसाइटी की अध्यक्षा चुनी जाने के बाद से श्रीमती ऐनी बेसेंट अड्यार (मद्रास) में रहने लगी। वहां से वे सारे देश का भ्रमण करती रहतीं । विदेशी होने के बावजूद भारतीय संस्कृति का उनका ज्ञान इतना गहन और व्यापक था कि देखकर आश्चर्य होता था । उन्होंने यहां के शिक्षित वर्ग को देश की सांस्कृतिक धरोहर का बोध कराया । श्रीमती सरोजनी नायडू के शब्दों में –'' उनका आविर्भाव ऐसा था मानो एक चकित राष्ट्र के सम्मुख किसी देवी ने शरीर धारण कर लिया हो।''

सन् 1912–1913 में उन्हें एक ऐसे विचित्र मुकदमें की पैरवी करनी पड़ी जिससे उन्हें काफी उलझन रही। श्री जी. नारायणैया ने अपने दोनों पुत्रों – जे. कृष्णमूर्ति और जे. नित्यानंद – के पालन पोषण और शिक्षा दीक्षा का दायित्व श्रीमती बेसेंट को सौप दिया था । उन्हें कृष्णमूर्ति में आत्मिक शक्ति के विकास की बहुत संभावनायें दिखाई दे रही थीं। उन्हें यह भी लग रहा था कि आगे चल कर वह थियोसाफी को नई उँचाईयों तक ले जाने में समर्थ होंगे। जब दोनों बालकों की शिक्षा पर काफी व्यय हो चुका और इंग्लैड के एक विश्वविद्यालय में उन्हें भरती करवाने की व्यवस्था हो गई तब श्री नारायणैया ने श्रीमती ऐनी बसेंट पर दावा कर दिया कि उनके पुत्रों का संरक्षण उन्हें वापस दे दिया जाये । श्रीगती बेसेंट ने इस मुकदमे में अपनी पैरवी खुद की । मद्रास हाईकोर्ट ने उन्हें आदेश दिया कि वे दोनों लड़कों को उनके पिता के पास वापस भेज दें । बाद में उन्होंने प्रीवी काउसिंल में अपील की । वहां वे जीत गई और

मद्रास हाईकोर्ट का निर्णय रद्द हो गया । श्रीमती बेसेंट उन दोनों भाइयों को शिक्षा पूरी करने में सहायता देती रहीं । बाद में कृष्णमूर्ति थियोसाफी आंदोलन के एक प्रमुख नेता तो हो गए किंतु साथ ही इस सोसाइटी की कुछ कार्यविधियों से असंतुष्ट होकर उन्होंने इससे अपना संबंध तोड़ लिया और एक नई विचारधारा के नेता हो गये । सोसाइटी के सदस्यों की एक बहुत बड़ी संख्या भी उनके साथ अलग हो गई।

देश में जगह जगह स्वाधीनता की ओर बढ़ने का प्रयास हो रहा था लेकिन उसमें एकरूपता नहीं थी । श्री महादेव गोविंद रानाडे की प्रेरणा से श्री गोपालकृष्ण गोखले तथा उनके सहयोगियों ने सार्वजनिक कल्याण हेतु भारत सेवक समाज (सर्वेंट्स आफ इंडिया सोसाइटी) की स्थापना की । यह सोसाइटी राजनीति में नरमपंथी दल का प्रतिनिधित्व करती थी । बंगाल के विभाजन से भारतीय पहले ही असंतुष्ट थे, पंजाब, बंबई, कलकता में जो दमन चक्र चला उससे लोग त्राहि–त्राहि कर उठे । श्री बालगंगाधर तिलक और लाला लाजपत राय के विरूद्द झूठे आरोप लगा कर मुकदमे चलाये गये । वीर सावरकर को लंबे अर्से के लिए जेल में डाल दिया गया था । लोग अपने अपने ढंग से विरोध प्रकट कर रहे थे । अनेक देशभक्त भारत माता की जय–जयकार करते हंसते–हंसते फांसी के तख्ते पर झूल गये; अनेक परम धैर्य के साथ जेल की नारकीय यातना झेलते रहे । सन 1916 में श्रीमती बेसेंट ने भी उसका विरोध करने के लिये देशभर में व्यापक रूप से अपील की और होमरूल लीग की स्थापना की। उन्होंने 'द आर्डर आफ संस एण्ड डाटर्स आफ इंडिया' नामक संस्था का भी संगठन किया । उनका आग्रह था कि नरमपंथियों और गरम पंथियों को मिल कर हिंदू मुस्लिम एकता के लिए प्रयास करना चाहिए जिससे एक साथ मिल कर राष्ट्रीय स्तर पर आवाज़ उठाई जा सके । इस काम में अनेक कुशल और उत्साही समर्थक उनके साथ थे । साप्ताहिक कामन विल और दैनिक न्यू इंडिया का संपादन और प्रकाशन कार्य जार्ज एस. आरुण्डेल और बी. पी. वाडिया बहुत ही लगन के साथ संभाले हुए थे । श्रीमती बेसेंट अपने पत्रों द्वारा स्वराज के पक्ष में बराबर तीखे और सरकार विरोधी लेख लिख रही थीं । नये सरकारी कानूनों के अंतर्गत न्यू इंडिया प्रेस को बार बार जमानतें देनी पड़ रही थीं। अनेक बार जमानतें

जब्त भी हो जाती थीं।

लखनऊ कांग्रेस में नरमंपथियों और गरमपंथियों के बीच एक अस्थायी समझौता हो गया । सन १९१६ में कुड्डालूर में एक सम्मेलन में भाग लेते समय श्रीमती बेसेंट ने भारतीय होम रूल के पक्ष में बहुत ज़ोरदार भाषण दिया । फलस्वरूप मद्रास के तत्कालीन गवर्नर ने उन्हें भारत छोड़कर चले जाने का आदेश दिया । श्रीमती बेसेंट के भारत छोड़ कर जाने का प्रश्न ही नहीं था। उन्होंने इस आदेश को मानने से इंकार कर दिया । जून सन 1917 में श्रीमती बेसेंट तथा उनके सहयोगी जी. एस. आरुण्डेल और बी. पी. वाडिया को मद्रास सरकार के आदेश से नजरबंद कर दिया गया । अपनी नजरबंदी के आदेश से तीन दिन पूर्व उन्होंने न्यू इंडिया में लिखा :

> ''सही अर्थों में मेरे राजनीतिक जीवन का प्रारंभ सन 1874 में दिए मेरे पहले भाषण स्त्रियों की राजनीतिक अवस्था से होता है । तब से यह जीवन निरंतर जनता की सेवा के लिए समर्पित रहा है, अतः सेवा के उस अधिकार का छीन लिया जाना मेरे लिए सबसे बड़ी क्षति है । मैं जानती हूँ कि स्वार्थी और देश प्रेम की भावना से विहीन लोग मेरी व्यथा को नहीं समझ सकते लेकिन सहधर्मी अवश्य समझ सकेंगे। कुछ गहरे निजी स्नेह संबंधों से प्राप्त आनंद को छोड़कर सेवा के आनंद के अतिरिक्त, जीवन में मेरे लिए दूसरा कोई आकर्षण नहीं है। स्वाधीनता का त्याग और स्नेहियों से संपर्क टूटना मेरे लिए मृत्यु के समान है, लेकिन एक कायर और अप्रतिष्ठित व्यक्ति के रूप में धर्मद्रोही और देशद्रोही होकर उन प्रियजनों के बीच स्वतंत्र रहना मेरे लिए नरक के समान है ।''

सन 1918 तक श्री मोहनदास करमचंद गांधी दक्षिण अफ्रीका से भारत वापस आ चुके थे और साथ लेकर आये थे वि ़ध का एक नया और अहिंसात्मक अस्त्र–सत्याग्रह । स्वदेश आते ही वे ान जीवन में रग गये । बिहार में नील की खेती में कठोर परिश्रम कर वाले मजदूरों की

दुर्दशा की ओर उनका ध्यान आकर्षित हुआ । गांधी जी ने एक तरफ उन पर किए जा रहे अत्याचारों की ओर देश का ध्यान आकर्षित किया, दूसरी ओर उनकी स्थिति सुधारने का प्रयास भी किया । न देश में दुखियारों की कमी थी, न गाँधी जी सेवा – सहायता से पीछे हटने वाले थे । एक समस्या, फिर दूसरी, फिर तीसरी। गांधी जी का मूल उद्देश्य था सरकार के सामने असहयोग की दीवारें खड़ी करते चले जाना । तरह तरह के आंदोलन और अभियान चला कर वह स्थिति ला देना कि शासन ठप्प हो जाये और सरकार को स्वराज्य देने के लिए विवश होना पड़े । बाद में गांधी जी ने सविनय अवज्ञा आंदोलन भी चलाया जिसका श्रीमती ऐनी बेसेंट ने विरोध किया ।

सन् 1919 में ब्रिटिश संसद ने लार्ड सेल्बोर्न की अध्यक्षता में एक जांच समिति नियुक्त की । इसके सम्मुख राष्ट्रीय होम रूल लीग की प्रतिनिधि के रूप में श्रीमती बेसेंट ने तथा कुछ अन्य प्रतिनिधियों ने भारत का पक्ष प्रस्तुत किया । भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के प्रति जागरूकता फैलाने के उद्देश्य से श्रीमती बेसेंट ने अनेक देशों का दौरा किया; लंदन में होमरूल लीग की एक शाखा खोली जिसके अध्यक्ष जाने माने सांसद जार्ज लैसबरी थे । उन्होंने इंग्लैड में यूनाइटेड इंडिया नाम से एक सप्ताहिक पत्र प्रारंभ किया और 'न्यू इंडिया' का एक विदेशी संस्करण भी प्रकाशित होने लगा ।

सन् 1919 में वहीं जलियाँवाला बाग में हुए अमानुषिक हत्याकंड से जन मानस में जैसे बिजली का करंट दौड़ गया । सरकार की इन ज्यादतियों को कब तक चुपचाप झलेते रहेंगे ? और क्यों ?

सन् 1922 से 1924 के बीच ऐनी बेसेंट ने अपने सहयोगियों की सहायता से भारत के लिए एक स्वराज संविधान तैयार किया । यह संविधान दिल्ली में हुए एक राष्ट्रीय सम्मेलन के सामने रखा गया । इसके बाद भी कई सम्मेलनों का आयोजन हुआ, आत्मनिर्णय, स्वराज आदि विषयों पर विस्तृत लेख लिखे गये और इस सबसे जनता में सुगबुगाहट बढ़ती गई, वह बंधन तोड़ने के लिए कसमसाने लगी ।

सन् 1925 से 1929 के बीच श्रीमती बेसेंट ने भरपूर प्रयास किया कि त्वराज्य के लिए एक ऐसी योजना बनाई जाय जिसे सब दलों और प्रमुख नेताओं का समर्थन मिल सके । बहुत दौड़ धूप और प्रयत्नों के बाद पं. मोतीलाल नेहरू के नेतृत्व में स्वराज्य की यह योजना तैयार भी हो गई। कलकत्ता में दिसंबर सन 1929 में एक सर्वदलीय सम्मेलन हुआ जिसमें श्री मुहम्मद अली जिन्ना मुस्लिम लीग के प्रतिनिधि के रूप में आए । श्री एम. आर. जयकर भी उसमें उपस्थित थे । योजना की कुछ धारायें पारित होते–होते लगा कि बस, इस बार बात अवश्य बन जाएगी, लेकिन बात बनी नहीं । केंद्रीय धारा सभा में मुसलमानों के प्रतिनिधित्व के प्रतिशत पर मतभेद हो गया और सारा काम अधूरा ही छूट गया ।

इन लगातार असफलताओं से जनता क्षुब्ध थी । विदेशी सरकार की दमन नीति यथावत बनी हुई थी। स्वराज्य की मंजिल अभी और कितनी दूर है, यही प्रश्न चारों ओर से उठ रहा था । संग्राम अभी भी जारी था।

स्वतंत्रता–संग्राम में किसने कितना त्याग किया, किसने कितना बलिदान दिया, किसका कितना योगदान रहा, क्या सचमुच इन प्रश्नों का कोई उत्तर है ? क्या हमारे पास कोई ऐसा पैमाना है जिससे हम उस भावना का, उन बलिदानों का मूल्य आंक सकें ? सच तो यह है कि देश की स्वाधीनता के उस यज्ञ में सभी अपने अपने सामर्थ्य के अनुसार आहुति दे रहे थे । किस आहुति को महत्त्वपूर्ण कहा जाये और किसको उपेक्षणीय ? कौन सी सार्थक थी, कौन सी निरर्थक ? जो हिंसा के पक्षधर नहीं है वे भी जब भगतसिंह या सुखदेव या राजगुरू जैसे वीरों को भारत माता की जय बोलते हुए प्रसन्नता पूर्वक फांसी के तख्ते पर झूल जाने की बात सुनते हैं, तो क्या गर्व से उनका माथा ऊंचा नहीं हो जाता ? क्या फिर भी यह पूछने की इच्छा शेष रह जाती है कि वे किस प्रदेश के थे, किस जाति के थे, किस पार्टी के थे और कौन सी भाषा बोलते थे ? गांधी जी से स्वतंत्रता संग्राम को अलग करके हम देख ही नहीं सकते । गांधी जी थे परम सात्विक, परम वैष्णव, मानवता की सेवा को समर्पित व्यक्ति । उन्होंने कभी अपनी सुविधा नहीं देखी, अपने परिवार की बात नहीं सोची, लेकिन हमारे आपके लिए वे चिंतित रहे ।

जीवन संध्या

''एक निरंकुश आवश्यकता मुझे विवश करती है कि मैं जो कुछ सत्य समझती हूँ, वही कहूँ, चाहे इससे लोग प्रसन्न हों या अप्रसन्न, इससे मेरी प्रशंसा हो या निंदा । मेरे चाहे जो मित्र मुझसे दूर हट जायें, चाहे जो मानवीय संबंध टूट जायें, मैं सत्य के प्रति अपनी निष्ठा पर दाग नहीं लगने दूंगी । यह सत्यनिष्ठा चाहे मुझे बियावान में ले जाए तो भी मैं इसका साथ नहीं छोड़ूँगी, यह चाहे मुझे सारे प्रेम से वंचित कर दे तो भी मैं इसका अनुगमन करूंगी । यह चाहे मेरा वध कर दे तो भी मैं इस पर विश्वास करूंगी और मैं चाहूंगी कि मेरी समाधि पर केवल इतना ही लिखा जाय –

इसने सत्य का अनुसरण करने का प्रयास किया ।''

– ऐनी बेसेन्ट

जीवन संध्या ! थक कर विश्राम करने का समय । अतीत में जीने का समय । दूसरों की गतिहीनता पर खेद प्रकट करने का समय । अपनी कल्पना को साकार न हो पाते देख कर दुख मनाने का समय । लेकिन उस जीवन संध्या को क्या कहियेगा जिसकी गति के सामने युवा शक्ति भी हार माने जाये ?

सन् 1908 में इकसठ वर्ष की आयु में ऐनी बेसेंट ने बारह दिनों में जगह जगह चौवालिस लंबे भाषण दिये जिनके बाद एक घंटे का समय प्रश्नोत्तर के लिये रहता था, और निजी स्तर पर भेंट करने आने वालों की तो कोई गिनती ही नहीं थी ।

– वर्ष 1909 में उन्होंने पैंतालिस हजार मील की यात्रा की ।

– सन् 1927 में अस्सी वर्ष की आयु में उन्होंने इक्कीस दिनों में पूरे यूरोप की यात्रा की जहाँ उन्होंने जर्मनी, हालैंड, डेनमार्क, नार्वे, स्वीडन, फिनलैंड, पौलैंड, चेकोस्लोवाकिया, आस्ट्रिया, हंगरी, स्विटजरलैंड और फ्रांस आदि की राजधानियों और प्रमुख नगरों में पचास से भी अधिक भाषण दिये । पेरिस से उनका कुशल समाचार अडयार पहुंचा तो उसमें लिखा था – ''वह सुबह नौ बजे अपनी हवाई यात्राओं के बाद पेरिस पहुंची । यह करिश्मा, कि वह और अस्सी वर्ष मिल कर अब भी कितना कुछ कर सकते है, लिख कर रख लेने वाली बात है । इस तूफ़ानी दौरे के बाद वह पहले से भी अधिक तरोताज़ा लग रही है ।''

यात्रा करना श्रीमती बेसेंट का शौक भी था, अनिवार्यता भी। रेलगाड़ी में, जहाज़ पर या हवाई जहाज़ में, वह बहुत ही हंसमुख और जिंदादिल सहयात्री थीं। भारतीय रेलगाड़ियों में मित्रों की टोली सहित यात्रा करना उन्हें विशेष प्रिय था । वह जल्दी सोती थीं और जल्दी ही उठ जाती थी। उनके साथी सोये ही रहते थे जबकि वह नहा धोकर सबके लिये काफी बनाने में जुट जाती थीं। वह बहुत अच्छी काफी बनाती थीं। साथियों के जागने की प्रतीक्षा में वह अपनी सीट पर बैठ कर बायें हाथ से कागज पकड़ कर लिखती रहतीं जिससे लेखन पर गाड़ी के झटकों का प्रभाव न पड़े । सबके जाग जाने पर वे उत्साहपूर्वक गर्म गर्म काफी बनाकर देतीं थीं।

यात्रा में वह अपना आवश्यक सामान हाथ में ही लेकर उतरती थीं। स्टेशन पर स्वागतार्थ आए मित्रों के आग्राह पर कोई सामान उन्हें पकड़ाती थी तो इस हिदायत के साथ कि गाड़ी में वह सामान उनके पास रखने तक वह सज्जन उनकी आँखों से ओझल न हों । उनका कहना था कि आपका सामान सबसे अधिक असुरक्षित तभी रहता है जब आपके मददगार उसकी देखरेख में लगे होते हैं।

अडयार में ऐनी बेसेंट सुबह पांच बजे उठ कर नहा–धोकर पूजा पाठ करतीं। काफी और टोस्ट वह काठ के बने पिछले बरामदे में बैठ कर लेतीं, जहां से अडयार नदी और बंगाल की ख़ाड़ी का प्रातःकालीन वैभव

उनके अंतर को उगते सूर्य की किरणों से भर देता ।

रोज सुबह नौ से दस के बीच वह कार द्वारा अड्यार से मद्रास जाती। वहां कार्यालय की ऊंची–ऊंची सीढ़ियाँ चढ़कर वह अपने कक्ष तक पहुंचतीं, जहां वह सरकार पर गहरा प्रहार करने वाले सम्पादकीय या जनता में हलचल मचा देने वाले लेख लिखती रहतीं। टाइपराइटर का प्रयोग करना उन्हें पसंद नहीं था । दिनभर वे लिखती ही रहतीं। उनकी लेखनी जितनी सशक्त थी उतनी ही गतिशील भी । उनकी लिखाई सुंदर और कलात्मक थी । वे इसका भी पूरा ध्यान रखती थीं कि कोई लाइन टेढ़ी न हो और कोई विराम चिह्न आदि छूट न जाये । उनकी लिखी पुस्तक पुस्तिकाओं की संख्या 362 थी। उन्होंने 18 पत्र पत्रिकाओं का समय समय पर संपादन किया और 26 पुस्तकें लिखने में सहयोग प्रदान किया जिनमें से कुछ जानी मानी पुस्तकें उन्होंने सी. डब्लयू लेडबीटर के साथ मिलकर लिखी थी।

सहयोगी उप संपादकों की लिखी एक एक पंक्ति ध्यान से पढ़ने के बाद ही वह छपने के लिये देतीं। विज्ञापनों तक की भाषा उनकी नजर से नहीं छूटती थी। शाम को पांच बजे तक अखबार की पहली प्रति उनकी मेज पर आ जाती और वह पूरी प्रतियाँ छपने का आदेश देने से पहले उस पर एक नजर फिर डाल लेतीं कि कहीं कोई परिवर्तन तो अपेक्षित नहीं है । ओ. के. वह कभी नहीं लिखती थीं क्योंकि शब्दों को प्रचलित संक्षिप्त रूप में लिखना उन्हें बेहद नापसंद था। जब पत्र की छपाई शुरू हो जाती तब वह सीढ़ियाँ उतरकर गाड़ी में जा बैठतीं। उनका स्वामिभक्त ड्राइवर पीटर उनकी दिनचर्या अच्छी तरह जानता था । वह उन्हें वहाँ से सीधा 'द यंग मैन्स इण्डियन एसोसिएशन' की इमारत में ले जाता, जो पास ही थी। यहां आकर काफी पीते हुए कुछ देर बिताना उन्हें बहुत अच्छा लगता था । यह भवन उन्होंने ही मद्रास के युवकों को भेंट किया था । इसमें रेस्टोरेंट के अतिरिक्त विद्यार्थियों के रहने के लिए कमरे थे और एक बहुत बड़ा हाल था जिसे श्रीमती बेसेंट ने गोपाल कृष्ण गोखले हॉल नाम दिया था ।

शाम साढ़े छह बजे तक अडयार पहुंच कर वे पुनः काम में जुट जातीं और रात नौ बजे तक लेखन कार्य करतीं। नौ बजे वह बिस्कुट और सूप का हल्का भोजन करतीं। इसके बाद वे अपना कमरा बंद करके ग्यारह बजे रात तक लिखती – पढ़ती –रहतीं और फिर बत्ती बुझा कर सो जातीं।

सन् 1919–1920 में वह एक बहुत बड़े संकट से बच गईं। उसका विवरण उन्होंने अपनी डायरी में इस प्रकार लिखा है –

"मैंने यह इच्छा प्रकट की थी कि सन १९२१ में नये अध्यक्ष का चुनाव कर लिया जाये । मेरे इस प्रस्ताव का अनेक लोगों ने विरोध किया । वास्तव में यह सुझाव देने का एक कारण था जो अब मैं साफ साफ लिख सकती हूँ । पिछले साल मैंने यह महसूस किया कि मेरी एक आँख की रोशनी समाप्तप्राय है और दूसरी से कम दिखाई देने लगा है । उन दिनों मैं इग्लैंड में थी और काम इतना अधिक था कि किसी डाक्टर से परामर्श कर पाना संभव नहीं हुआ । भारत लौटने पर जनवरी में मैंने डाक्टर को दिखाया तो उन्होंने कहा कि इसका कोई इलाज नहीं है और आप धीरे – धीरे अंधी हो जायेंगी । लेकिन कुछ सप्ताह पूर्व एक विचित्र घटना घटी । मैंने पाया कि मेरी एक आँख बिल्कुल ठीक हो गई है और दूसरी धीरे धीरे ठीक हो रही है । मेरे मन पर से बहुत बड़ा बोझ उतर गया । मैं अंधे होने के लिए अपनी आपको तैयार तो कर रही थी लेकिन यह कोई सुखद अनुभव न होता । ईश्वर को धन्यवाद है कि उन्होंने मुझे इस अग्नि परीक्षा से बचा लिया ।"

ऐनी बेसेंट के बारे में कुछ लोगों का कथन है कि उनके स्वभाव में हास परिहास के लिये कोई स्थान नहीं था । एक आलोचक ने तो यहां तक कहा कि वह गर्वीली और गंभीर हो सकती है तथा प्रसन्न और विनीत भी, लेकिन वह हंस नहीं सकती। हँसना उन्हें आता ही नहीं था ।

यह आलोचना कितनी सही है कितनी गलत इसका अनुमान उनके साथ घटी कुछ घटनाओं से अच्छी तरह हो जाता है :

जनवरी सन् 1908 :

एडेलैंड के टाउन हाल में श्रीमती ऐनी बेसेंट का भाषण होने वाला था। भीड़ इतनी थी कि हाल के बाहर बहुत बड़ी संख्या में लोग निराश खड़े थे । श्रीमती बेसेंट ठीक भाषण के समय ही पहुंचा करती थीं । जब वे अन्दर जाने लगी तो गेट पर खड़े सिपाही ने विनम्रतापूर्वक कहा, 'महोदया ! हाल पूरा भर चुका है । आपका अंदर जाना संभव नहीं है ।'

'कोई बात नहीं' वह मुस्करा कर बोलीं, 'लेकिन मुश्किल यही है कि उस स्थिति में भाषण भी नहीं हो पाएगा ।'

यह सुनकर सिपाही ने हंस कर गेट खोलते हुए कहा, क्षमा कीजिएगा महोदया, तब तो मुझे कहना चाहिए था कि अभी तक एक व्यक्ति के लिये जगह और है ।

अप्रैल सन् 1930 :

उन दिनों श्रीमती बेसेंट 'द थियोसफिस्ट' के दो संस्करण एक साथ प्रकाशित करवाने की योजना बना रही थीं जिससे दूर दूर के पाठकों को जितने समय में पुराना एक संस्करण मिलता था, उतने ही समय में दो मिल जायें।

उनका एक आलोचक उनकी हर बात से उसी तरह भड़कता था जैसे कोई बैल लाल कपड़ा देखकर भड़कता है। उसने आरोप लगाया कि श्रीमती बेसेंट पत्रिका का पैसा खाने पर तुली है ।

सुनकर वयोवृद्ध श्रीमती बेसेंट बोली, "[illegible] पहुंच मेरी बैंक की पास बुक तक है । [illegible]

मुझे उकसा कर वह मानहानि का दावा दायर करवाने में सफल नहीं हो पाएगा । मेरी और उसकी स्थिति वैसी ही है जैसी उस नामी मुक्केबाज़ की थी जिससे पूछा गया कि आखिर वह अपनी बीबी से मार क्यों खा लेता है ? तो उसने मुस्करा कर जवाब दिया, इससे उसका मनोरंजन भी होता है और मुझे चोट भी नहीं लगती । लगता है मनोरंजन की कुछ ऐसी ही धारणा हमारे इन विरोधी महाशय की भी है ।''

अक्तूबर सन 1931

श्रीमती बेसेंट के घुटनों में दर्द रहता था फिर भी घर में बैठने वाली तो थीं नहीं, तूफानी वेग से काम करती रहतीं। बार बार सीढ़ियाँ उतरने चढ़ने से उनका कष्ट और भी बढ़ जाता । कुछ शुभचितंकों ने अनके लिए अडयार वाले घर में हाथ से चलाए जाने वाली एक लिफ्ट लगवा दी । उस पर रखी एक कुर्सी पर वह बैठ जाया करती थीं। लिफ्ट इतनी धीमी गति से ऊपर जाती थी कि देखने वालों को जल्दी यह पता ही नहीं लग पाता था कि वह चल भी रही है या नहीं । एक दिन वह काफी दूर से यात्रा करके लौटने के कारण बहुत थकी हुई थी। कुर्सी पर बैठी बैठी वह लिफट की गति को लक्ष्य करते हुए मुस्करा कर बोली हम लोग आस्था के भरोसे चलते हैं, दृष्टि के भरोसे नहीं ।

ये परिहास उन दिनों का है जब उनकी आयु लगभग बयासी तिरासी वर्ष थी !! ढलती उम्र में जो व्यक्ति इतना सटीक व्यंग्य कर सकता है, वह हंसना निश्चित रूप से जानता है ।

कवि जेराल्ड मैसी ने उनके त्यागमय जीवन को शब्दों में बांधने का प्रयास इस प्रकार किया है :

बीज बोती हो तुम,
औरों के हेतु,
वर्षा बन कर
तुम्हारे ही अश्रु
उसे पकाते हैं;

किन्तु
मुस्कानें औरों के लिए
फसल औरों के लिए ।
तुम्हारी एक पुकार से
नींद में डूबे हुए भी
जागकर तीर्थयात्री हो जाते हैं,
मां तुम
सारी वसुंधरा की;
नेह बरसातीं,
धरा को स्वर्ग बनातीं !
तुम पर था विश्वास
प्रभु का
वीर थीं तुम
सचाई पर चलने को
अधीर थीं, तुम
तुम शायद न जानती हो,
तुम शायद न मानती हो,
किन्तु ऐनी बेसेन्ट
तुम,
बस अंत तुम थीं !

सूयास्त का समय हो आया । श्रीमती बेसेंट के [illegible] शांति में गुजरे । ऊपर के बरामदे से वह अडयार [illegible] मिलते देख सकती थीं। उनके पास केवल वही लोग [illegible] प्रिय थे और जिनका आना उन्हें सुखद लगता था । [illegible] निरंतर गिरता जा रहा था । उनके मन में सपने को [illegible] की निराशा थी । 20 सितंबर सन 1933 को सायंकाल [illegible] हो गया । वे तो भारतमाता की गोद में हमेशा [illegible] जागती रहेगी उनकी निष्ठा, उनकी दृढ़ता, [illegible] स्वेच्छा से अपनाई हुई इस माँ के लिए [illegible] । [illegible] शब्दों में —“भारत माता को समर्पित [illegible]

पौत्र नहीं है । मैं अपना जीवन ही इसे समर्पित करती हूँ । जो लोग अपना सर्वस्व समर्पित कर देते हैं, उनके पास देने के लिये और शेष रह ही क्या जाता है ?"